इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC 102
हिंदी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

खंड

2

आधुनिक हिंदी काव्य

इकाई 4
छायावाद 5

इकाई 5
उत्तरछायावाद 30

इकाई 6
प्रगतिशील काव्य 45

इकाई 7
प्रयोगवाद एवं नयी कविता 66

इकाई 8
समकालीन हिंदी काव्य 95

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
बीडी/8ए, डी.डी.ए. फ्लैट, मुनिरका
नई दिल्ली–110056

प्रो. निर्मला जैन
ए–20/17, डी.एल.एफ., सिटी, फेज–1,
गुड़गांव–122002, हरियाणा

प्रो. नित्यानंद तिवारी
सी–1, न्यू मुल्तान नगर, रोहतक रोड,
नई दिल्ली–110067

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
बी–5, एफ–2, दिलशाद गार्डन,
दिल्ली–110035

प्रो. हरिमोहन शर्मा
184, कादम्बरी अपार्टमेंट,
सेक्टर–9,
रोहिणी, दिल्ली–110085

प्रो. गोबिंद प्रसाद
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

संकाय सदस्य
प्रो. सत्यकाम (निदेशक)
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी (पाठ्यक्रम संयोजक)
प्रो. जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक	इकाई सं.
प्रो. जवरीमल पारख (सेवानिवृत्त) इग्नू, नई दिल्ली	4
प्रो. परमानंद श्रीवास्तव	
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी इग्नू, नई दिल्ली	5
प्रो. देव शंकर नवीन जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	6 तथा 8
प्रो. परमानंद श्रीवास्तव	7

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सहयोग
डॉ. दिनेश कुमार
डॉ. शंभुनाथ मिश्र
परामर्शदाता, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सचिवालयीय सहयोग
श्री नवल कुमार
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

आवरण
श्री रंजन कुमार सिंह

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि.प्र., इग्नू, नई दिल्ली

श्री बाबूलाल रेवाड़िया
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि.प्र., इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2020

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020*

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से संबंधित सूचना प्राप्त करने के लिए इसके मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110 068 स्थित कार्यालय से संपर्क किया जा सकता है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर कम्पोजिंगः राजश्री कम्प्यूटर्स, V-166A, भगवती विहार, उत्तम नगर, (नजदीक सैक्टर 2, द्वारका), नई दिल्ली–59

मैसर्सः राज प्रिंटर्स, ए–9, सैक्टर बी–2, ट्रॉनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद (यू.पी.)

खंड का परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अंतर्गत आप हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन कर रहे हैं। अब तक आपने द्विवेदी युग तक के हिंदी साहित्य के विकास-क्रम से परिचय प्राप्त किया है। इस 5वें खंड में हम आपको आधुनिक हिंदी काव्य की द्विवेदी युग के बाद की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों से परिचित कराएँगे। इस खंड में कुल 5 इकाइयाँ हैं। पाठ्यक्रम की इकाई 4 में छायावाद के बारे में बताया गया है। छायावाद आधुनिक हिन्दी काव्य की सबसे महत्वपूर्ण काव्य प्रवृत्ति है जिसने हिंदी को जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा जैसे महान रचनाकार दिए हैं। छायावाद राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के उस दौर की काव्य प्रवृत्ति है जब हमारे देश में राष्ट्रीय स्वाधीनता का आंदोलन जनता की आकांक्षाओं का आंदोलन बन रहा था और मध्य वर्ग में एक मानवतावादी-स्वच्छन्दतावादी-राष्ट्रवादी दृष्टिकोण उभर रहा था।

छायावाद के बाद दो काव्य प्रवृत्तियाँ अस्तित्व में आईं। पहली प्रवृत्ति छायावाद की स्वच्छन्दतावादी-राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का ही विकास थी। इसे उत्तरछायावादी काव्य के नाम से जाना जाता है। दूसरी प्रवृत्ति प्रगतिवाद है जो केवल कविता का आंदोलन नहीं था बल्कि साहित्य की सभी विधाओं पर इसका असर पड़ा था। यह एक अखिल भारतीय आंदोलन था। 1930 के बाद भारतीय स्वधीनता आंदोलन में वामपंथ के बढ़ते प्रभाव ने इस आंदोलन की दिशा तय की। इन दोनों काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन आप क्रमशः इकाई 5 एवं 6 में करेंगे। इकाई 7 में प्रयोगवाद और नयी कविता की चर्चा की गई है। प्रयोगवाद का जन्म प्रगतिवाद की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ, ऐसा माना जाता है। प्रयोगवाद में काव्य के रूप और शिल्प पर विशेष बल दिया गया है। कविता में व्यक्ति के प्रयोगवादी अनुभवों की अभिव्यक्ति प्रधान हो गई। जबकि नयी कविता स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की मध्यवर्गीय आकांक्षाओं का प्रतिफलन थी। इन दोनों काव्य प्रवृत्तियों में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष रहे।

अंतिम इकाई संख्या 8 में नयी कविता के बाद के दौर के काव्य विकास को प्रस्तुत किया गया है। सन् 1960 के बाद हिंदी कविता में लगभग एक दशक तक व्यक्तिवादी-आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों का ही जोर रहा। यही नहीं इस दौर में निषेधवाद, काव्य की केन्द्रीय पहचान बना। सातवें दशक की समाप्ति के बाद उभरी परिस्थितियों ने एक नए माहौल का निर्माण किया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी में प्रगतिशील और जनवादी कविता का एक नया उभार सामने आया। बाद की लगभग दो दशक की कविता इसी नए उभार के विकास को सूचित करती है। सातवें दशक में गीतों का भी स्वतंत्र आंदोलन प्रकट हुआ जिसे नवगीत के नाम से जाना गया। इस नवगीत परम्परा में भी लगभग तीन दशकों में कई परिवर्तन आए। इन सबका अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 छायावाद

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 छायावाद की पृष्ठभूमि

- 4.2.1 द्विवेदीयुगीन काव्य और छायावाद
- 4.2.2 छायावादकालीन परिस्थितियाँ
- 4.2.3 छायावाद का अभिप्राय

4.3 छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- 4.3.1 आत्माभिव्यक्ति की भावना
- 4.3.2 रूढ़ियों से मुक्ति
- 4.3.3 रहस्यवाद
- 4.3.4 प्रकृति-प्रेम
- 4.3.5 नारी-स्वातन्त्र्य की भावना
- 4.3.6 राष्ट्रीय-भावना

4.4 छायावाद की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ

- 4.4.1 कल्पना का नवोन्मेष
- 4.4.2 काव्य-भाषा
- 4.4.3 छंद से मुक्ति
- 4.4.4 बिंब और प्रतीक

4.5 प्रमुख छायावादी कवि

- 4.5.1 जयशंकर प्रसाद
- 4.5.2 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
- 4.5.3 सुमित्रानंदन पंत
- 4.5.4 महादेवी वर्मा

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

आधुनिक हिंदी काव्य से संबंधित खंड की यह पहली इकाई है। इसमें आप छायावाद नामक काव्यधारा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- द्विवेदीयुगीन काव्यधारा से छायावाद के संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे;
- छायावाद के दौर की परिस्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- छायावाद का अभिप्राय समझा सकेंगे;
- छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- छायावाद की भाषा की विशेषताएँ बता सकेंगे; और
- छंद, प्रतीक, शैली आदि के संबंध में छायावादी काव्य की विशिष्टता का उल्लेख कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास से संबंधित इस पाठ्यक्रम में आप अब तक द्विवेदीयुगीन साहित्य के विकासक्रम का अध्ययन कर चुके हैं। द्विवेदीयुग के बाद के दौर में हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं का स्वतंत्र रूप से और तीव्र गति से विकास हुआ। इसलिए इस खंड में और आगे के खंडों में हिंदी साहित्य के विकासक्रम को विधाओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पाँचवां खंड आधुनिक हिंदी काव्य से संबंधित है और यह इस खंड की पहली और पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। प्रस्तुत इकाई 'छायावाद' नामक काव्यधारा से संबंधित है।

आधुनिक हिंदी काव्य-धारा के विकास में छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काव्यधारा ने जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा जैसे महान रचनाकार दिए हैं। छायावाद ने न केवल अंतर्वस्तु के स्तर पर वरन् काव्य-भाषा और संरचना-शिल्प की दृष्टि से भी हिंदी कविता को समृद्ध किया है और उसे एक नई ऊँचाई प्रदान की है। इस इकाई के आरंभ में हम आपको बताएँगे कि इस काव्यधारा का नाम छायावाद क्यों और कैसे पड़ा। हम उन परिस्थितियों से भी आपको परिचित कराएँगे जिनके बीच यह काव्यांदोलन उदित हुआ तथा इस बात पर भी विचार करेंगे कि छायावाद से क्या तात्पर्य है।

इस इकाई में हम आपको छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियों का परिचय देंगे और भाषा, छंद, शैली, प्रतीक आदि की दृष्टि से भी उसके योगदान की चर्चा करेंगे। इकाई के अंत में हम प्रमुख छायावादी कवियों के साहित्यिक अवदान का उल्लेख करेंगे। इस प्रकार पूरी इकाई पढ़ने से आपको स्पष्ट हो सकेगा कि हिंदी काव्य के विकास में छायावाद की क्या भूमिका है।

4.2 छायावाद की पृष्ठभूमि

छायावाद का आरंभ ठीक-ठीक कब हुआ, यह बताना असंभव है। कोई इसका आरंभ निराला की कविता 'जुही की कली' के प्रकाशन से मानता है, तो कोई पंत के काव्य-संग्रह से। 'जुही की कली' का प्रकाशन 1916 ई. में हुआ था और 'वीणा' 1918 में प्रकाशित पंत का पहला काव्य संग्रह है। मुकुटधर पांडेय की कविता 'कुररी के प्रति' से भी कई लोग छायावाद का आरंभ मानते हैं। छायावाद का आरंभ ठीक-ठीक किस कविता से माना जाए, इसका निर्णय करने की बजाए हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि

वे कौन-से कारण हैं जिसने 'छायावाद' नामक नयी काव्यधारा के उदय के लिए जमीन तैयार की। 'कुररी के प्रति' या 'जुही की कली' या प्रसाद और पंत की आरंभिक कविताएँ जिस सत्य की ओर इंगित करती है वह यह है कि बीसवीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में हिंदी कविता में एक नयी प्रवृत्ति का उदय हो रहा था, जो पूर्व की काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न थी। यह प्रवृत्ति उन नए रचनाकारों के माध्यम से सामने आ रही थी जिन्होंने अपना लेखन अभी आरंभ ही किया था। इसी नयी काव्य प्रवृत्ति का नाम छायावाद क्यों और कैसे पड़ा, यह पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों से किस रूप में भिन्न थी तथा वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने इस नयी प्रवृत्ति के लिए जमीन तैयार की, इसका अध्ययन आप आगे करेंगे।

4.2.1 द्विवेदीयुगीन काव्य और छायावाद

वीरगाथा काव्य, भक्ति काव्य और श्रृंगार काव्य की मध्ययुगीन परंपरा से भिन्न आधुनिक युग में हिंदी काव्य में नवीन काव्य-प्रवृत्तियों का उदय हुआ। भारतेंदु युग, मध्ययुगीन काव्य-प्रवृत्तियों और आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष का युग था। एक ओर भक्तिपरक और श्रृंगारिक रचनाएँ लिखी जा रही थीं, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय भावना, सामाजिक सुधार और नये जीवन-मूल्यों का वाहक काव्य भी रचा जा रहा था, आधुनिक काल के आरंभ होने से पूर्व हिंदी साहित्य, ब्रजभाषा में लिखा जा रहा था, जबकि अब भारतेंदु युग में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग क्यों हो। यह द्वंद्व बीसवीं शताब्दी में प्रवेश के साथ समाप्त हो गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से यह दृढ़तापूर्वक स्थापित कर दिया कि गद्य और पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिए और इसके लिए खड़ी बोली ही सर्वथा उपयुक्त है।

भारतेंदु युग के साहित्य में जिन प्रवृत्तियों के अंकुर फूटे थे, द्विवेदी युग में उनका ही विकास हुआ, तथापि द्विवेदी युग की परिस्थितियाँ और समस्याएँ वही नहीं थीं। द्विवेदी युग में राष्ट्रीय भावना पहले से अधिक प्रबल हुई। यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया कि रीतिवादी काव्य-परंपरा का पूर्ण अस्वीकार आवश्यक है। इसका प्रतिफल द्विवेदी युग के काव्य में सामाजिक उत्थान की भावना के रूप में हुआ। वर्तमान की दीन-हीन दशा (गुलामी का एहसास), अतीत के प्रति गौरव भाव और भविष्य को बेहतर बनाने का संकल्प द्विवेदी युग की कविता का आधार बना। परंतु इस युग के काव्य में स्वतंत्रता और मुक्ति की कोई स्पष्ट भावना नहीं उभर सकी। गुलामी का अनुभव तो हुआ परंतु मुक्ति की प्रबल चाह उसका स्थान न ले सकी। स्थूल यथार्थ तो कवि की नजरों में आया, लेकिन उसमें निहित सत्य को देखने की अंतर्दृष्टि विकसित न हो सकी। यही कारण है कि द्विवेदी युग के काव्य को इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता का काव्य कहा गया। द्विवेदी युग में खड़ी बोली में काव्य रचा जाने लगा, लेकिन छंदयुक्त होने पर भी भाषा गद्यात्मक ही रही। काव्य के अनुकूल उसमें कोमलता, लयात्मकता और संवेदनात्मकता का समावेश न हो सका।

लेकिन दूसरे दशक में ही मुकुटधर पांडेय, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त आदि कवियों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का उदय होने लगा था। ये कवि भाव और भाषा दोनों स्तरों पर द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मकता से मुक्त होने की कोशिश कर रहे थे। प्रकृति और मानव-जीवन को आत्मगत, आत्मीय और रूमानी दृष्टि से देखने की ललक कवियों में उत्पन्न हो रही थी। द्विवेदी युग की वस्तुवादी-नैतिकतावादी दृष्टि से यह दृष्टि भिन्न थी। इसी उदित होती नयी प्रवृत्ति, जिसे स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) कहा जाता है, ने छायावाद के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

4.2.2 छायावादकालीन परिस्थितियाँ

प्रथम युद्ध (1914-1918) की समाप्ति के समय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं। प्रथम विश्वयुद्ध ने साम्राज्यवाद के समूचे ढाँचे पर स्थायी और जबरदस्त प्रहार किया। 1917 की रूसी क्रांति ने भी संपूर्ण विश्व पर अपना प्रभाव जमाया। विशेष रूप से उन देशों पर जो परतंत्र थे। भारत में भी इसी दौर में जन आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। इससे पहले तक भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष केवल चिट्ठियों, आवेदनों और लेखों से ही अभिव्यक्त हो रहा था, और वह भी केवल कुछ अधिक अधिकारों की ही माँग की जा रही थीं।

परंतु 1916 में गांधीजी के भारत आगमन के बाद कांग्रेस का आंदोलन शहर में रहने वाले शिक्षित उच्च मध्यवर्ग से निकलकर गरीब किसानों और मजदूरों की बीच भी फैल गया। इसके साथ ही यह भावना भी प्रबलतर होने लगी कि केवल स्वतंत्रता और मुक्ति ही एकमात्र लक्ष्य हो सकता है। दासता से मुक्ति की यह भावना इतनी प्रबल हो रही थी कि यह केवल राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी बल्कि प्राचीन रूढ़ियों, मान्यताओं और रीतिरिवाजों से मुक्ति की कामना भी उभर रही थी। जाति, धर्म, संप्रदाय आदि के भेदभाव अब लोगों को खलने लगे थे। नये शिक्षित मध्यवर्ग को अब नये जीवन-मूल्यों और आदर्शों की जरूरत महसूस होने लगी। इसी चाह ने उसे यूरोप के पुनर्जागरणकालीन आदर्शों और विचारधाराओं को जानने समझने की ओर प्रेरित किया। पुनर्जागरण से प्रेरित यूरोप के स्वच्छंदतावादी साहित्यिक आंदोलन ने उसे सोच और संवेदना का नया धरातल दिया। वस्तुतः उस युग में भारत का बुद्धिजीवी जिन सामाजिक परिस्थितियों के बीच जी रहा था, लगभग वैसी ही परिस्थितियाँ सौ साल पहले के यूरोपीय समाज में भी थीं। जैसी मुक्ति की इच्छा और छटपटाहट भारत का मध्यवर्ग इस समय कर रहा था, वैसी ही भावना तत्कालीन यूरोपीय समाज में मौजूद थी। इसलिए ये स्वाभाविक था कि नये कवि उनके काव्य से प्रेरणा लेते। कीट्स, बॉयरन, वर्ड्सवर्थ, कालरिज, शैली आदि रोमांटिक कवियों के काव्य और उनके लेखन ने उन्हें सोचने-समझने का नया क्षितिज प्रदान किया।

4.2.3 छायावाद का अभिप्राय

प्रसाद, निराला, पंत जैसे कवियों की कविताएँ 1915-16 ई. के आसपास सामने आने लगी थी। इन नयी तरह की कविताओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पत्र-पत्रिकाओं में इनकी चर्चा होने लगी। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 1920 ई. तक इन कविताओं के लिए 'छायावाद' नाम रूढ़ हो गया। जबलपुर की पत्रिका 'श्री शारदा' में मुकुटधर पांडेय के 'हिंदी में छायावाद' नाम से चार निबंधों की एक लेखमाला प्रकाशित हुई जिसमें पहली बार छायावाद के बारे में विधिवत विचार किया गया था। 1921 में 'सरस्वती' पत्रिका में सुशील कुमार नामक किसी लेखक ने 'हिंदी में छायावाद' शीर्षक एक संवादात्मक निबंध लिखा। इन निबंधों से स्पष्ट है कि नयी तरह की कविताओं के लिए 'छायावाद' शब्द 1920 तक स्वीकृत हो चुका था।

'छायावाद' नाम कैसे प्रचलित हुआ, इस संबंध में मतभेद है। सुशील कुमार के लेख से स्पष्ट है कि उनके लिए ये कविताएँ टैगोर स्कूल की चित्रकला के समान 'अस्पष्ट' होने के कारण छायावादी कही जाने लगीं। मुकुटधर पांडेय ने अपनी लेखमाला के दूसरे निबंध 'छायावाद क्या है?' में इस प्रश्न पर विचार किया है। उनके अनुसार 'अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जाएँगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म के लिए आया है' (डॉ.नामवर

सिंह की पुस्तक 'छायावाद' से उद्धृत)। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, 'पुराने ईसाई संतों के छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकावाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थीं। यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाये रास्ते का दरवाजा-सा खुल पड़ा और हिंदी के कुछ नये कवि उधर एकबारगी झुक पड़े।' आचार्य शुक्ल के इस मत पर टिप्पणी करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बंगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिंदी में आया है।' द्विवेदी जी ने छायावाद नाम पर टिप्पणी करते हुए यह भी कहा है कि 'छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के जोर से ही स्वीकारणीय हो सका, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है। बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रभाषा-शैली या प्रतीक पद्धति के रूप में माना गया, या फिर रहस्यवाद के अर्थ में' छायावाद नाम सोच-विचार कर नहीं रखा गया, शायद उपहास उड़ाने के लिए यह नामकरण किया गया। परंतु जब एक बार यह नाम प्रचलित हो गया तो इसे स्वीकार कर लिया गया।

'छायावाद' नाम स्वीकृत होने के बाद भी यह समस्या बनी रही कि इसका अभिप्राय क्या है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद के दो अर्थ किये हैं-एक रहस्यवाद के अर्थ में और दूसरा काव्य शैली के अर्थ में। उन्हीं के शब्दों में, 'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।'

'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। उनके अनुसार, छायावाद का पहला अर्थ लेकर तो हिंदी काव्य क्षेत्र में चलने वाली महादेवी वर्मा ही हैं। छायावाद की कविताओं के संदर्भ में ईसाई धर्म, पश्चिम के स्वच्छंदतावादी कवियों और रवींद्रनाथ की कविताओं की विशेष रूप में चर्चा हुई। शुक्लजी ने छायावाद पर ईसाई धर्म, यूरोपीय कविता और रवीन्द्रनाथ के प्रभाव की चर्चा की है। उन्होने छायावाद को या तो 'अज्ञात के प्रति जिज्ञासा' के भाव के आधार पर रहस्यवाद समझा या फिर वे छायावाद को शैली मात्र समझते रहे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद भी छायावाद की आध्यात्मिक परिभाषा होती रही। यह अवश्य हुआ कि छायावाद में निहित रहस्य भावना को उसका भावपक्ष मान लिया गया और शैलीगत विशेषताओं को उसका कला पक्ष। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी यद्यपि छायावाद के आध्यात्मिक पक्ष को स्वीकारते हैं परंतु उनके अनुसार उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी छायावाद में 'मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता' स्वीकार की है। लेकिन वे यह भी कहते हैं कि 'छायावादी कविता बाह्य ऐंद्रियबोध तथा चेतन मन की सीमाओं को पार कर अचेतन के रहस्य लोक में पहुँचती है और जाने-अनजाने उसका मर्मोद्घाटन करती है।' छायावाद को कई कवियों-आलोचकों ने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह भी कहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के संदर्भ में स्वच्छंदतावाद और रहस्यवाद की चर्चा होती रही है। उसमें रहस्यभावना की प्रमुखता स्वीकार की गई तो दूसरी ओर उसके

मानवतावादी दृष्टिकोण को भी स्वीकार किया गया। उसकी नवीन कला पद्धति की पहचान की गयी परंतु छायावाद के भावपक्ष और कला पक्ष के अंतःसंबंधों की सुविचारित व्याख्या नहीं की गयी। छायावाद को तब तक सही ढंग से नहीं समझा जा सकता था, जब तक कि उसे तत्कालीन स्थितियों के संदर्भ में नहीं देखा जाता। यह काम बाद में डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, जैसे आलोचकों ने किया। इन्होंने छायावाद को राष्ट्रीय आंदोलन और पूंजीवाद के विकास के साथ जोड़ा। पश्चिम के स्वच्छंदतावादी कवियों, टैगोर के काव्य और निराला आदि छायावादी कवियों के काव्य की समानता के कारण पर विचार करते हुए डॉ.रामविलास शर्मा ने कहा है कि 'शैली, ठाकुर और निराला के युगों की परिस्थितियों में एक बात समान रूप से विद्यमान है और वह है पूँजीवाद का प्रारंभिक विकास।' डॉ.नामवर सिंह ने छायावाद को राष्ट्रीय जागरण से जोड़ते हुए लिखा है कि 'छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ-विस्तार होता गया।'

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद शब्द को किन दो अर्थों में प्रयुक्त किया है। उत्तर केवल 3-4 पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

2) निम्नलिखित विचार किन विद्वानों के हैं, सही नाम के आगे (✓) का चिह्न लगाइएः

क) छायावाद पूँजीवाद के आरंभिक विकास का परिणाम है।

(निराला, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह)

ख) छायावाद की मुख्य प्रेरणा मानवीय और सांस्कृतिक है।

(नंददुलारे वाजपेयी, रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद)

ग) भावपक्ष की दृष्टि से छायावाद और रहस्यवाद एक ही है।

(रामचंद्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

घ) छायावाद राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है।

(रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, महादेवी वर्मा)

अभ्यास

1) छायावाद जिन राष्ट्रीय परिस्थितियों के बीच उदित हुआ उनकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

4.3 छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

अब तक आपने छायावाद के बारे में जो कुछ पढ़ा है उससे यह तो आप समझ ही गए होंगे कि छायावाद नामक काव्यान्दोलन में किसी एक खास प्रवृत्ति की प्रमुखता नहीं है। छायावादी कवियों ने रहस्य-भावना से संबंधित कविताएँ लिखीं, शुद्ध प्रकृति-प्रेम की कविताएँ भी लिखीं, ऐसी कविताएँ भी लिखीं जिनमें 'स्व' की अभिव्यक्ति थी। राष्ट्र प्रेम और समाज-सुधार की भावना से प्रेरित रचनाओं की कमी भी नहीं थी। कहने का तात्पर्य यह है कि छायावाद वस्तुतः इन सभी प्रवृत्तियों का समुच्चय है। इन सभी प्रवृत्तियों को जोड़ने वाला तत्व है- मुक्ति की भावना। छायावादी काव्य वस्तुतः मुक्ति का, स्वतंत्रता का काव्य है। अगर हम विचार करें तो पाएँगे कि उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियों में अंतर्निहित सत्य मुक्ति की भावना ही है। 'असीम के प्रति जिज्ञासा' के मूल में ईश्वर और धर्म के परंपरागत संप्रदायवादी रूप से मुक्ति की कामना ही विद्यमान है। प्रकृति-प्रेम में प्रकृति की तरह स्वतंत्र होने की इच्छा और कामना ही अभिव्यक्त हुई है। राष्ट्र प्रेम में पराधीनता से मुक्ति की भावना है। रूढ़ियों से मुक्ति, नारी को मित्र और सहचर मानने का भाव, अपने स्व को उन्मुक्त भाव से व्यक्त करने की इच्छा भी वस्तुतः मुक्ति की कामना का ही प्रतिफलन है। इसलिए छायावादी काव्य पर विचार करते हुए इस स्वतंत्रता के तीव्र बोध को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए।

4.3.1 आत्माभिव्यक्ति की भावना

हम भक्ति काव्यधारा के अध्ययन के दौरान भक्त कवियों के आत्मनिवेदन के बारे में पढ़ चुके हैं। छायावाद से पूर्व हिंदी काव्य परंपरा में अपने 'स्व' को व्यक्त करने का प्रयास भक्त कवियों ने ही किया था अन्यथा कवि विभिन्न विषयों पर रचनाएँ करते हुए अपने को निरपेक्ष और तटस्थ रखता था। भक्त कवियों के आत्मनिवेदन की सीमा यह थी कि उसमें ईश्वर के प्रति भक्ति की ही अभिव्यक्ति थी। उस आत्मनिवेदन पर डॉ. नामवर सिंह के अनुसार धर्म का आवरण था। छायावादी कवियों ने पहली बार अपने 'स्व' को व्यक्त करने की कोशिश की। उन्होंने 'मैं' द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया। अपनी निजता को आत्मीय ढंग से वाणी दी। अगर उन्होंने अपने प्रेम को व्यक्त किया तो राधा-कन्हाई का बहाना नहीं ढूँढा। अपने मन की पीड़ा को शब्द दिए। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, छायावादी कवि ने 'यह जो 'मैं' शैली अपनाई, वह केवल शैली भर नहीं है। इस निजता और आत्मीयता के पीछे आधुनिक युवक का पूरा व्यक्तित्व है, जो अपने को सीधे-सीधे अभिव्यक्त करने की सामाजिक स्वाधीनता चाहता है।'

आरंभ में छायावादी कवियों ने अपनी प्रणय-भावना को अभिव्यक्ति दी, बाद में कवियों ने अपने जीवन के दूसरे दुःख-दर्दों को भी वाणी दी। इस दृष्टि से निराला की 'सरोज स्मृति ' कविता विशेष उल्लेखनीय है। इस कविता में निराला ने अपनी एकमात्र पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखे शोकगीत में अपने जीवन की तकलीफों, आर्थिक कष्टों, प्रकाशकों और संपादकों के दुर्व्यवहारों, अपनी लड़की के विवाह में आने वाली कठिनाइयों का अत्यंत कारुणिक वर्णन किया हैः

> धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
> कुछ भी तेरे हित न कर सका!
>
> जाना तो अर्थागमोपाय,
> पर रहा सदा संकुचित-काय

लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।

पंत ने अपनी कविताओं में अपनी प्रणय-भावना को व्यक्त किया है। कविता में प्रसाद ने अपने जीवन के रीतेपन और मौन व्यथा को व्यक्त किया हैः

इस गंभीर अनंत-नीलिमा में असंख्य जीवन-इतिहास
यह लो, करते ही रहते हैं अपना व्यंग्य-मलिन उपहास
तब भी कहते हो-कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती।
तुम सुनकर सूखा पाओगे, देखोगे-यह गागर रीती।

महादेवी का संपूर्ण काव्य आत्म-पीड़ा की ही अभिव्यक्ति है, 'मैं नीर भरी दुःख की बदली।' लेकिन उन्होंने अपनी आत्म-पीड़ा को रहस्यवाद के माध्यम से व्यक्त किया है।

4.3.2 रूढ़ियों से मुक्ति

जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, छायावाद में आत्माभिव्यक्ति अपने को व्यक्त करने की भावना से प्रेरित थी। अपने को व्यक्त करने की यह इच्छा वस्तुतः उन आंतरिक भावों के उद्वेग से पैदा हुई थी जो अपने को व्यक्त करने का मार्ग खोज रही थीं। छायावाद का कवि सामाजिक बंधनों के बीच छटपटा रहा था क्योंकि उसके हृदय में स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न हो गयी थी। वह अपनी भावनाओं को विस्तार देना चाहता था, अपनी आत्मा को घर की चारदीवारी से मुक्त करना चाहता था। यह 'आत्म-प्रसार की आकांक्षा' ही विभिन्न रूपों में छायावाद में व्यक्त हुई है। आत्मप्रसार की इस इच्छा ने छायावादी कवयों को यह समझ प्रदान की कि संकीर्णता और रूढ़िबद्धता से आत्मविकास नहीं किया जा सकता।

कविता 'पंचवटी प्रसंग' में निराला ने इसी बात को कहा हैः

छोटे से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोनिधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर

अर्थात् घर की चारदीवारी में कैद रहने से हमारे भाव भी क्षुद्र बने रहते हैं, प्रेम का सागर तो पृथ्वी की सीमाहीनता में ही पनप सकता है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि किस तरह छायावादी कवियों के सम्मुख एक नयी दुनिया का द्वार खुल रहा था। रीतिवादी कवियों की तरह उनका प्रेम, घर की चारदीवारी और कुंजों में नहीं पल-पनप रहा था। वे अपने प्रेम को, अपने हृदय की आकांक्षा को, समस्त सृष्टि में व्याप्त देखना चाहते थे। उन्होंने यह पहचान लिया था कि मुक्ति की जो आकांक्षा उनके हृदय में पनप चुकी है, उसमें प्राचीन रूढ़ियाँ और जीवन-मूल्य अवरोध ही हैं। पंतजी ने इसी भावना को वाणी देते हुए कहा है कि 'प्राचीन प्रचलित विचार और जीर्ण आदर्श समय के प्रवाह में अपनी उपयोगिता के साथ अपना सौंदर्य भी खो बैठते हैं, उन्हें सजाने की जरूरत पड़ती है। नवीन आदर्श और विचार अपनी उपयोगिता के कारण संगीतमय और अलंकृत होते हैं।' रूढ़ियों से मुक्ति का यह प्रयास इतना व्यापक था कि छायावादी कवियों ने भावनाओं और विचारों के क्षेत्र में ही नहीं भाषा, शैली, छंद के क्षेत्र में भी पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होने का दृढ़तापूर्वक प्रयास किया। 'पल्लव' की भूमिका में सुमित्रानंदन पंत ने ब्रज भाषा का

विरोध इसी कारण किया था और निराला ने छंद के बंधन से कविताओं को मुक्त इसीलिए किया था।

4.3.3 रहस्यवाद

आत्माभिव्यक्ति और आत्म प्रसार की आकांक्षा छायावाद की विशिष्ट पहचान है। लेकिन यह मार्ग इतना सहज भी नहीं था। अपने हृदय की भावनाओं को पूर्ण उन्मुक्तता के साथ व्यक्त करना आसान नहीं था। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में 'सामाजिक रूढ़ियों के प्रहार की आशंका से कवि को वैयक्तिक अनुभूतियों के लिए रहस्यवाद का आश्रय लेना पड़ा। पुरुष तो अपनी प्रणय भावना को किसी न किसी ढंग से व्यक्त कर सकता था, लेकिन नारी के लिए यह सहज संभव नहीं था।' दूसरी ओर रीतिवाद ने प्रणय भावना को इतना हल्का और क्षुद्र बना दिया था कि छायावादी कवि अपने प्रेम को उस धरातल पर नहीं उतारना चाहते थे। इसलिए 'ऐहिक वैयक्तिकता की क्षुद्रता से उसे बचाने के लिए' उस पर रहस्यात्मकता का आवरण डाल दिया। छायावाद में रहस्य भावना का सामाजिक आधार यही है।

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 'काव्य में रहस्य-भावना एक प्रकार से 'परोक्ष की जिज्ञासा' है। वैज्ञानिक उन्नति ने आधुनिक मनुष्य को अंधविश्वासों से मुक्त कर दिया। अब वह प्रकृति और सृष्टि को जानना-समझना चाहता है। उसमें प्रकृति के प्रति जिज्ञासा का भाव उत्पन्न हुआ। स्वच्छंदतावादी काव्य की यह खास विशेषता है।' पंत जी के यहाँ यह जिज्ञासा 'शिशु सुलभ सरलता' के साथ प्रकट हुई है।

> प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
> तूने कैसे पहचाना?

इसी तरह स्तब्ध रात्रि में आकाश में चमकते तारे कवि को मौन निमंत्रण देते नजर आते हैं और वह अपने आप से प्रश्न पूछता है कि इन नक्षत्रों से कौन मुझे निमंत्रण दे रहा हैः

> स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
> चकित रहता शिशु सा नादान,
> विश्व के पलकों पर सुकुमार
> विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
> न जाने, नक्षत्रों से कौन
> निमंत्रण देता मुझको मौन।

इस अज्ञात और असीम को जानने की जिज्ञासा ही रहस्य भावना है। डॉ.नामवर सिंह के अनुसार 'यह जो अज्ञात और असीम की अभिलाषा है वह वस्तुतः ज्ञात सीमाओं के असंतोष से ही उत्पन्न हुई है और यह असंतोष तथा अभिलाषा केवल दिमागी ऐय्याशी नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक आधार है। यह असंतोष और महत्वाकांक्षा उस मध्यवर्गीय व्यक्ति का है जो मध्ययुगीन पारिवारिक और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर उन्मुक्त वातावरण में सांस लेने के लिए आकुल हो रहा था। वह प्राचीन सीमाओं से तो परिचित था, लेकिन नवीन क्षितिज की कोई स्पष्ट रूपरेखा उसके मन में न थी। वह इतना ही जानता था कि इन सीमाओं से परे जो कुछ है, वह असीम है।' इस असीम को जानने की जिज्ञासा, मिलने की तड़प और कभी-कभी उस असीम से मिल लेने का काल्पनिक सुख छायावादी कविताओं में व्यक्त हुआ है। मिलन का यह काल्पनिक सुख क्षणिक है, विरह की वेदना ही अधिक व्यक्त हुई हैः

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जलजात।

यह संपूर्ण जीवन ही विरह का कमल हो गया है, जिसका जन्म वेदना से हुआ है और करुणा में ही जिसका घर है। दिन-रात रो-रोकर जीवन व्यतीत करना ही इस जीवन की कहानी है।

छायावादी काव्य में रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति और कई रूपों में हुई है। निराला के यहाँ यह रहस्य भावना प्रकृति के विराट स्वरूप में व्यक्त हुई है। 'राम की शक्ति पूजा' में निराला प्रकृति में ही शक्ति का विराट रूप देखते हैं।

देखो, बंधुवर, सामने स्थिर जो यह भूधर
शोभित शत-हरित गुल्म-तृण से श्यामल सुंदर
पार्वती कल्पना हैं इसकी मकरंद-बिंदु
गरजता चरण-प्रांत पर सिंह वह,नहीं सिंधु
दशदिक समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर
अंबर में हुए दिगंबर अर्चित शशि-शेखर,
लख महाभाव मंगल पद तल धँस रहा गर्व,
मानव के मन का असुर मंद हो रहा खर्व।

जयशंकर प्रसाद के यहाँ रहस्य भावना दार्शनिक धरातल पर व्यक्त हुई है। कामायनी में 'मनु' का प्रकृति से साक्षात्कार, मनु के मन में काम का उदय तथा श्रद्धा द्वारा आकाश में ज्ञान, इच्छा और क्रिया का मिलन रहस्य भावना की ही अभिव्यक्ति है। लेकिन मुख्य बात यह है कि छायावाद के रहस्यवाद को धार्मिक, आध्यात्मिक या दार्शनिक धरातल पर नहीं समझा जा सकता।

4.3.4 प्रकृति-प्रेम

छायावादी कवियों के हृदय में मुक्ति की जिस आकांक्षा का उदय हुआ, उसने उन्हें प्रकृति से प्रेम करना भी सिखाया है। अपने आसपास के जीवन और जगत में जो बंधन और जकड़न कवियों को नजर आती थी, प्रकृति उससे सर्वथा मुक्त थी। इसलिए इन कवियों के लिए प्रकृति उनके हृदय की मुक्ति और स्वच्छंदता की प्रेरणा बन गयी। प्रकृति के साथ मनुष्य का गहरा रिश्ता है। आधुनिक जीवन ने प्रकृति को देखने-समझने की नयी दृष्टि प्रदान की। उन्होंने प्रकृति के महत्व को समझा, उसे अपना मित्र, सहचर, प्रेयसी, माँ सब कुछ माना। प्रकृति उनके लिए उतनी ही प्राणवान और सजीव थी, जितना वह स्वयं। इसलिए छायावादी कवियों ने प्रकृति को न तो उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किया और न ही अप्रस्तुत विधान के रूप में। उन्होंने प्रकृति के कण-कण से अपना रागात्मक संबंध जोड़ा। उसकी गतिविधियों को सूक्ष्मता से देखा और उन्हें नया अर्थ दिया। प्रकृति के विराट और सूक्ष्म दोनों रूपों को अपनी कविता का विषय बनाया। महादेवी प्रकृति की विराटता में जगत्जननी का साक्षात् रूप देखती है :

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल
झुक सस्मित शीतल चुंबन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल

छायावादी कवियों ने 'प्रकृति के परिचित दृश्यों को नये रूप में देखा और अनेक अपरिचित तथा अदृश्य वस्तुओं पर भी दृष्टिपात किया।' (नामवर सिंह) उदाहरण के लिए संध्या का चिर-परिचित दृश्य निराला के यहाँ बिल्कुल नये रूप में अवतरित होता हैः

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर
किंतु गंभीर नहीं है उनमें हास-विलास

(संध्या सुंदरी)

इस कविता में निराला ने संध्या को 'सुंदरी' के रूप में अपूर्व सौंदर्य दिया है जो इससे पहले शायद ही किसी कवि ने दिया है। इसी तरह पंत के यहाँ प्रकृति के कई ऐसे मनोरम चित्र मिलते हैं जो इससे पूर्व कभी काव्य रूप में व्यक्त न हुए। जैसे ऊँचे पहाड़ों के बीच तैरते बादलों का यह दृश्यः

बादलों का छायामय मेल
घूमते हैं आंखों में फैल
अवनि औ अंबर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल!

ऐसा ही समुद्र का रौद्र रूप प्रसाद की 'कामायनी' में व्यक्त हुआ है। छायावादी कवियों ने 'प्रकृति के विविध ऐंद्रिक बोध जगाने वाले दृश्यों का भी अंकन' किया है। 'वर्ण, ध्वनि, गंध, स्पर्श और स्वाद संबंधी सूक्ष्म ऐंद्रिक बोध जगाने वाले' दृश्य छायावाद में पहली बार व्यक्त हुए। निराला की 'बादल राग-I' कविता इस दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली है जहाँ कविता का छंद, लय और भाषा ही वर्षा का अनुपम ध्वनि चित्र हमारे सामने खड़ा कर देती हैः

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर
राग-अमर अंबर में भर निज रोर
झर-झर-झर निर्झर-गिरि सर में
घर, मरु तरु मर्मर सागर में,
सरित-तड़ित गति चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रण घोर कठोर
राग-अमर अंबर में भर निज रोर

छायावादी कवियों द्वारा प्रकृति के सूक्ष्म और नवीन सौंदर्य बोध की अभिव्यक्ति का कारण स्पष्ट करते हुए डॉ. नामवर सिंह कहते हैं, 'प्रकृति ने मनुष्य में सौदर्य बोध जगाया और मनुष्य ने उस सौंदर्य बोध के द्वारा प्रकृति में छिपे हुए नये-नये सौंदर्य का उद्घाटन किया।' वस्तुतः यह प्रकृति के साथ मनुष्य का नया रिश्ता था, जो छायावाद के माध्यम से व्यक्त हुआ।

4.3.5 नारी-स्वातन्त्र्य की भावना

मध्ययुगीन काव्य में नारी या तो कामिनी के रूप में या फिर देवी के रूप में चित्रित हुई। नारी भी मानव है- यह भावना तो आधुनिक युग की ही देन है। द्विवेदीयुगीन साहित्य में नारी की दीन-हीन दशा को कविता का विषय बनाया गया परंतु वहाँ कवि का भाव दया का ही अधिक था। नारी के प्रति प्रेम को सहज रूप से स्वीकार करना और उसे उतनी ही सहजता से कविता में प्रस्तुत करना छायावाद में ही संभव हुआ। नारी को अपनी ही तरह मानवी मानना, उसे अपना सहचर और मित्र समझना आधुनिक शिक्षा का परिणाम था। जहाँ एक ओर नये विचारों ने नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन किया, वहीं दूसरी ओर स्वयं नारी की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ। लड़कियों में शिक्षा का प्रसार बढ़ा। शिक्षित स्त्रियाँ घर की सीमा रेखा लाँघ कर नौकरियों और सामाजिक कार्यों में आगे आने लगीं। पुरुषों को भी यह अवसर प्रदान किया कि वे स्त्री के प्रति अपने परंपरागत दृष्टिकोण को बदले।

छायावाद ने पहली बार स्त्री और पुरुष के प्रेम को वैयक्तिक भावनाओं के धरातल पर देखा। अब स्त्री 'पत्नी', 'देवी', 'कामिनी', 'दासी' के रूप में नहीं वरन् प्रेयसी, प्रियतम, सखि जैसे रूपों में सामने थी। इन संबोधनों में कहीं बराबरी का भाव था। उसे अपने चरणों की दासी या पूजनीय समझने की बजाए अपने हृदय में स्थान दिया।

छायावादी कवियों ने प्रेम को उच्च स्थान दिया, उस पर स्वतंत्र रूप से कविताएँ लिखीं। प्रसाद ने तो 'कामायनी' में काम को जीवन की मूल शक्ति माना है जो मनु में एक ओर जीवन की लालसा उत्पन्न करता है तो दूसरी ओर कर्म की प्रेरणा भी देता है।

प्रेम के प्रति इस बदले हुए दृष्टिकोण ने प्रणय संबंधी कविताओं को भी नवीन रूप दिया। छायावादी प्रेम कविताओं में भावनाओं का आवेग और संबंधों की प्रगाढ़ता का पता चलता है। प्रसाद की प्रणय संबंधी रचनाओं में माधुर्य की प्रधानता है तो निराला की कविता में उद्दाम आवेग। पंत की प्रेम कविताओं में भावों की सरलता और तरलता है। प्रेम का स्वरूप बदला तो छायावाद में नारी-सौंदर्य को देखने की दृष्टि भी बदली। छायावादी नारी के सौंदर्य में शरीर से अधिक भावों की प्रधानता है। जब मनु पहली बार श्रद्धा को देखते हैं तो उसका सौंदर्य स्थूल से अधिक भाव रूप में ही सामने आता हैः

> नील परिधान बीच सुकुमार
> खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
> खिला हो ज्यों बिजली का फूल
> मेघ बन बीच गुलाबी रंग

इस प्रकार छायावाद में नारी सौंदर्य में स्थूलता और शारीरिकता की अपेक्षा कल्पनाशीलता और भावात्मकता की प्रधानता है। छायावादी कविता में नारी को समानता का दर्जा तो प्राप्त हुआ परंतु मुख्य रूप से वह प्रेयसि के रूप में ही उपस्थित हुई। नारी के अन्य रूप प्रायः छायावादी कवियों की नजरों से ओझल ही रहे।

4.3.6 राष्ट्रीय-भावना

मुक्ति की जो आकांक्षा छायावादी कवियों की मुख्य प्रेरणा थी, उसने केवल वैयक्तिक भावनाओं के क्षेत्र में ही कवि को बंधन मुक्त नहीं किया वरन् उसे यह भी समझ दी कि

राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र के बंधनों से भी वह मुक्त हो। यही कारण है कि छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता की भावना कई रूपों में व्यक्त हुई है। यद्यपि छायावादी कवियों ने सीधे-सीधे राजनीतिक कविताएँ बहुत कम लिखी हैं परंतु राष्ट्र प्रेम और स्वतंत्रता की भावना को व्यक्त करने वाली कविताएँ काफी रची हैं। पराधीनता सबसे पहले राष्ट्र के गौरव पर चोट करती है और जब मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न होती है तो व्यक्ति को सबसे पहले अपने राष्ट्र के प्रति गौरव का भाव उत्पन्न करना होता है। वर्तमान में हम भले ही गुलाम हों लेकिन हमारा अतीत सदैव ऐसा ही नहीं रहा है, यही पुनरुत्थान की भावना है जो छायावादी काव्य में भी व्यक्त हुई है। प्रसाद के नाटकों में तो हम इसे पाते ही हैं उनकी कई कविताओं में भी यह भाव व्यक्त हुआ है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' ऐसी ही दो कविताएँ हैं। निराला की प्रसिद्ध रचनाओं 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' और 'जागो फिर एक बार' में अतीत की घटनाओं के माध्यम से राष्ट्र का आह्वान किया गया है कि वह गुलामी की जंजीरों को काट डाले। निराला का खंडकाव्य 'तुलसीदास' में भी कवि ने तुलसीदास के माध्यम से पराधीनता से संघर्ष का आह्वान किया है। ध्यान देने की बात यह है कि छायावादी कवियों ने अतीत से प्रेरणा अवश्य ली, परंतु अतीत की ओर लौटने की बात कभी नहीं कहीं।

राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति छायावादी कवियों में सीधे-सीधे देश प्रेम की कविताओं के माध्यम से भी हुई है। लेकिन यह देश प्रेम संकीर्ण नहीं है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में 'विश्व मानवतावाद की विराट भावना ने देश प्रेम की प्राचीन संकीर्णता को दूर कर उसके क्षितिज का विस्तार किया।' प्रसाद का यह गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैः

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ-विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।

छायावादी कवियों ने स्वतंत्रता का भी आह्वान किया। छायावादी कवियों ने इस स्वतंत्रता की भावना को व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी देखा। उन्होंने गरीब और उत्पीड़ित लोगों के दुःख दर्द को भी वाणी दी। निराला की 'दान', 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताएँ उनकी इसी भावना का प्रतिबिंब है। एक ओर गरीब पीड़ा झेलता है दूसरी ओर अमीर सुख वैभव में डूबे रहते हैं। इस सामाजिक विषमता को देखकर तो निराला ने 1923 में ही क्रांति का आह्वान कर दिया थाः

रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल।
त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
हे विप्लव के वीर!

छायावाद के इसी धरातल से प्रगतिवाद का विकास हुआ।

बोध प्रश्न

3) निम्नलिखित कथनों में सही कथन पर (✓) और गलत कथन पर (x) का चिह्न लगाइए।

   (क) छायावादी काव्य मुक्ति की आकांक्षा से प्रेरित काव्य है। (सही/गलत)

   (ख) छायावादी काव्य में नारी के कामिनी रूप को प्रधानता मिली है। (सही/गलत)

   (ग) छायावादी काव्य में प्रकृति आलंबन रूप में व्यक्त हुई है। (सही/गलत)

   (घ) छायावादी काव्य आत्म-प्रसार का काव्य है। (सही/गलत)

4) निम्नलिखित में से सही उत्तर कोष्ठक में लिखिए।

   छायावादी कवियों में रहस्य भावना व्यक्त हुई हैः

   (क) असीम के प्रति जिज्ञासा के रूप में

   (ख) असीम से मिलन की इच्छा के रूप में

   (ग) असीम से मिलन के काल्पनिक सुख के रूप में

   (घ) उपर्युक्त सभी रूपों में

5) छायावादी कवियों में मुक्ति की आकांक्षा क्यों उत्पन्न हुई? उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

अभ्यास

2) छायावादी काव्य को आत्माभिव्यक्ति का काव्य क्यों कहा गया है? स्पष्ट कीजिए। उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।

4.4 छायावाद की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ

छायावादी कविता ने जो नया भाव-बोध और नया सौंदर्य बोध दिया उसने हिंदी कविता को शिल्प के क्षेत्र में भी नवीनता प्रदान की। भाव ने भाषा, छंद, रूप और शैली में भी नवीन परिवर्तन किए। लेकिन यह नवीन परिवर्तन उस शक्ति के द्वारा संपन्न हुआ जिसे हम कल्पना कहते हैं।

4.4.1 कल्पना का नवोन्मेष

छायावाद स्वाधीनता की भावना का काव्य है। उस युग में भले ही राजनीतिक स्वतंत्रता न प्राप्त हुई हो परन्तु कवि का हृदय मानसिक रूप से स्वतंत्र हो चुका था। स्वाधीन मानस ने कवियों की भावनाओं और विचारों को असीम विस्तार दिया। जिस प्रकार बाँध टूटने

से नदी का पानी तीव्र वेग से बहता है उसी तरह छायावादी कवियों में भी भावनाओं का आवेग फूट पड़ा। भावावेग की तीव्रता ने छायावादी कवियों को संवेदनशील बनाया। वह अपने आसपास के जीवन-जगत् को गहरी संवेदना के साथ देखने-परखने लगा। जिज्ञासा और कुतूहल का भाव इसीलिए छायावाद में प्रधान हो गया। जिज्ञासा ने कवियों को कल्पनाशील बनाया। नामवर सिंह ने अनुसार, 'भावावेग जितना ही तीव्र होता है, अप्रस्तुत चीजों का रूप उतना ही अद्‌भुत और असामान्य होता है, और फिर ये अद्‌भुत तथा असामान्य चित्र हृदय में नये ढंग का आह्लाद और कंपन उत्पन्न करते हैं। संवेदना कल्पना को जाग्रत करती है और कल्पना संवेदना में वृद्धि करती है।'

छायावादी कवियों ने कल्पना की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। पंत ने 'पल्लव' में कविताओं को 'कल्पना के ये विह्वल बाल' कहा तो निराला ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा। इस कल्पना शक्ति ने छायावादी कवियों को वास्तविक जगत् को देखने की नयी दृष्टि प्रदान की। उन्होंने प्रकृति के विविध रूपों को व्यक्त करने के लिए ऐसे नवीन अप्रस्तुतों की योजना की है, जिनकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

मूर्त प्रस्तुत को अमूर्त प्रस्तुत से चित्रित करने की प्रवृत्ति इसी कल्पनाशक्ति का परिणाम है। पंतजी की 'बादल' कविता का यह अंश देखिएः

धीरे-धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर
नभ के उर में उमड़ मोह-से
फैल लालसा-से निशि भोर

जिन रूपों, वस्तुओं और घटनाओं को आम आदमी बाह्य रूप में ही देख पाता था, छायावादी कवियों ने अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से उनका आंतरिक स्वरूप उद्‌घाटित किया। छायावाद की इस कल्पनाशक्ति ने उनको विश्व-दृष्टि प्रदान की। उन्हें संपूर्ण जगत में एक ही प्राण-शक्ति के दर्शन हुए। भेद से अभेद की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, सीमा से असीम की ओर, बंधन से मुक्ति की ओर उनका प्रसार इसी कल्पना शक्ति के कारण हुआ। इसी ने उन्हें नये रूप और नयी शैली खोजने को प्रेरित किया। नयी भाषा और नये छंदों को सृजित करने की प्रेरणा दी। छायावाद के योगदान को इसी कल्पना के नवोन्मेष द्वारा व्याख्यायित किया जा सकता है।

4.4.2 काव्य-भाषा

द्विवेदी युग में यह तो तय हो गया था कि पद्य की भाषा खड़ी बोली हो। लेकिन द्विवेदी युग की प्रवृत्ति के अनुकूल ही इस युग की काव्यभाषा में गद्यात्मकता के गुण अधिक थे। द्विवेदी युग की भाषा विश्लेषणात्मक, शुष्क और विचार-प्रधान थी। जबकि छायावादी कवि संवेदनशील, भावुक और कल्पनाजीवी था। उसकी प्रवृत्ति स्वच्छंद थी तथा कोमलता, सुंदरता और भावप्रवणता की ओर उसका झुकाव था। इसलिए उसके लिए यह जरूरी था कि वह द्विवेदी युग से प्राप्त काव्य-भाषा को नया रूप प्रदान करे। द्विवेदी युग की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य था, लंबे समास वाले पदों के कारण भाषा जटिल हो गयी थी। छायावादी कवियों ने यद्यपि संस्कृत शब्दों के प्रयोग कर पुरानी प्रवृत्ति का ही अनुसरण किया परन्तु शब्द चयन में उन्होंने अपनी प्रवृत्ति का ध्यान रखा। इसी तरह लंबे समास पदों की बजाए छंद और लय के अनुकूल पद-रचना पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

छायावादी कवियों ने कोमल, सरस और सरल शब्दों के चयन की प्रवृत्ति दिखाई।

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन।

छायावादी कवियों की पद-रचना पर बंगला कविता, विशेष रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पद रचना का प्रभाव माना गया है। 'जुही की कली' (निराला) के उदाहरण से नामवर सिंह ने इस प्रभाव का विवेचन किया है। उनके अनुसार 'विजन-वन-वल्लरी', 'स्नेह-वन-वल्लरी', 'स्नेह-स्वप्न-मग्न', 'अमल-कोमल-तन', 'कुंज-लता-पुंज', 'उपवन-सर-सरित् गहन गिरि कानन' जैसे पद रचनाओं के पीछे रवीन्द्रनाथ का काव्य ही प्रेरक है।

छायावादी कवियों ने यद्यपि आरंभ में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया और उन्हें छायावादी रूप प्रदान किया अर्थात् उनका प्रयोग नवीन भावों और रूपों में किया। लेकिन बाद में उन्होंने तद्‌भव शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दिखाई। उन्होंने कई तत्सम शब्दों को नये तद्‌भव रूप भी दिए। उन्होंने कभी-कभी देशज शब्दों का प्रयोग भी किया।

छायावादी कवियों का काव्य-संस्कार अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी काव्य से भी निर्मित हुआ था इसलिए उनकी भाषा पर इन कवियों की पद-रचना का भी प्रभाव है। विशेष रूप से पंत की कविता पर यह प्रभाव अधिक दिखाई देता है। ब्रेक्ड हार्ट के लिए भग्न हृदय, हेवेन्ली लाइट के लिए 'स्वर्गीय प्रकाश', 'गोल्डेन ड्रीम', के लिए 'सुनहला स्वप्न' ऐसे ही प्रयोग हैं।

छायावादी कवि शब्दों के चयन में उसके अर्थ की ओर विशेष रूप से सजग रहते थे, इसलिए एक ही शब्द के पर्यायवाची शब्दों में सूक्ष्म अर्थ भेद को ध्यान रखकर वे उसके अनुकूल उनका प्रयोग करते थे। इसी तरह शब्दों के चयन में छायावादी कवि उसके नाद-सौन्दर्य पर भी ध्यान देते थे। इसके लिए वे अनुप्रास का सहारा लेते थे। छायावादी कवि यह अवश्य ध्यान रखते थे कि कविता को पढ़ते हुए कोई शब्द कर्ण-कटु न लगे और जो प्रभाव वे उत्पन्न करना चाहते थे, शब्द ठीक वही प्रभाव उत्पन्न करें।

शब्दों के चयन में छायावादी कवियों की रुचि एक सी नहीं थी। डॉ.नामवर सिंह ने इसका विवेचन करते हुए लिखा है कि 'हर छायावादी कवि के अपने कुछ प्रिय शब्द हैं और उन शब्दों से उनकी पूरी प्रवृत्ति का पता चलता है। पंत के शब्द अरूप और वायवी अधिक हैं क्योंकि वे कल्पना प्रधान थे। प्रसाद के शब्द मधु की तरह प्रगाढ़ अधिक हैं क्योंकि वह गहन अनुभूतियों के कवि थे। निराला के शब्द अनेक प्रकार के हैं क्योंकि उनमें प्रवृत्ति बहुलता है-कहीं उनकी पदावली विराटता का बोध कराती है, कहीं विद्रोह का और कहीं गाढ़ता का। महादेवी की पदावली से अतिशय अलंकृति का आभास मिलता है। पंत के शब्द यदि कुसुम हैं तो महादेवी के पद माणिक्य। महादेवी के शब्दों में 'रत्नों' की-सी चमक, कठोरता तथा कटा-छँटापन मिलता है, इससे उनके स्वभाव के अतिशय परिष्कार तथा तराश का बोध होता है।'

4.4.3 छंद से मुक्ति

छायावादी कवियों की भावनाओं में जो विशिष्टता थी, उसका प्रभाव उनके वाक्य-विन्यास और छंद-विधान पर भी पड़ा। छायावादी काव्य चूँकि भावावेश का काव्य है इसलिए उसके

छंदों में प्रगीतात्मकता की प्रधानता है। अपनी नवीन भावनाओं के अनुकूल छायावादी कवियों ने नए छंदों की खोज की। आरंभ में खड़ी बोली कविता के लिए संस्कृत, फारसी तथा रीतिकालीन छंदों का प्रयोग किया गया था, परन्तु यह द्विवेदी युग में ही स्पष्ट हो गया था कि खड़ी बोली इन पुराने छंदों के अनुकूल नहीं है। हिंदी के आरंभिक स्वच्छंदतावादी कवि यथा श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी ने हिंदी के लिए लोकप्रचलित छंदों का इस्तेमाल किया। छायावादी कवियों ने भी इसी का अनुसरण किया। इसके लिए लावनी, आल्हा, आदि लोक छंदों का प्रयोग किया। छायावादी कवियों ने इन छंदों को नया रूप प्रदान किया। उनमें तरह-तरह के नये प्रयोग किये। आज उन प्रयोगों को देखकर यह पहचानना कठिन है कि इनका संबंध आल्हा या लावनी से है। 'कामायनी' में 'आल्हा' के कई रूप प्रसाद जी ने प्रयुक्त किए हैं। पंत ने 'लावनी' का ही भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग किया है।

छंदों की दृष्टि से सबसे अधिक प्रयोग निराला ने किये हैं। उन्होंने लोकगीतों का भी प्रयोग किया है। छायावादी कवियों ने कुछ रीतिकालीन छंदों का भी प्रयोग किया है, लेकिन उन्हें भी आधुनिक रूप देकर। जैसे 'रोला' का प्रयोग छायावाद में काफी किया गया है। पंत ने 'परिवर्तन' इसी छंद में लिखा है। प्रसाद की 'कामायनी' का 'संघर्ष' सर्ग इसी छंद में है। प्रसाद का 'आँसू' इसी छंद में है, कामायनी का 'आनंद' सर्ग भी इसी में है। महादेवी ने 'नीहार' और 'रश्मि' में इस छंद में कुछ गीतों की रचना की है। प्रसाद के 'आँसू' में इसका सर्वाधिक सफल प्रयोग हैः

> जो घनीभूत पीड़ा थी
> मस्तक में स्मृति-सी छायी
> दुर्दिन में आँसू बनकर
> वह आज बरसने आयी

छायावादी कवियों ने नए-पुराने छंदों का प्रयोग केवल प्रयोग के लिए नहीं किया था वरन् यह ध्यान रखकर किया था कि कौन-सा छंद किस भाव के लिए उपयुक्त है।

छंद के क्षेत्र में छायावाद का सबसे बड़ा योगदान है मुक्त-छंद। अर्थात् छंद के बंधन से मुक्ति। मुक्त छंद, छंद के बाह्य आडंबर अर्थात तुक और मात्रा की गिनती, सम-विषम चरण से मुक्त अवश्य है लेकिन कविता की आत्मा, लय से मुक्त नहीं है। हिंदी में मुक्त छंद की शुरूआत निराला की कविता 'जुही की कली' से हुई है। यद्यपि इस कविता की लय घनाक्षरी की है परन्तु इसके चरण विषम हैं और तुक भी नहीं है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, 'मुक्त यह इसी बात में है कि भावावेग के अनुकूल इसके चरणों का विस्तार या संकोच किया गया है।'

> विजन-वन-वल्लरी पर
> सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
> अमल कोमन तनु तरुणी जुही की कली,
> दृग बंद किये, शिथिल-पत्रांक में
> वासंती निशा थी।

स्पष्ट ही इस कविता को अगर पूरी तरह घनाक्षरी में बाँध दिया जाता तो वह सौंदर्य उत्पन्न न होता जो इस कविता में अब विद्यमान है। मुक्त छंदों का प्रयोग छायावादी कवियों ने उसी भाव-स्वच्छंदता की भावना से किया था, जो उनके काव्य की मुख्य प्रेरणा रहा है।

छायावादी कवियों ने गीतों और प्रगीतों की भी रचना की है। निराला, महादेवी वर्मा ने इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ दी हैं। भावावेग की रचनाएँ प्रगीतात्मकता के ही अनुकूल होती हैं। यही कारण है कि छायावादी कविता में महाकाव्य लिखने की ओर प्रवृत्ति कम रही। 'कामायनी' में महाकाव्यात्मकता से अधिक प्रगीतात्मकता है।

छंद के क्षेत्र में छायावाद का योगदान अभूतपूर्व है। इस क्षेत्र में भी प्रत्येक कवि का अपना वैशिष्ट्य है। भाव क्षेत्र की तरह इस क्षेत्र में भी सबसे अधिक प्रयोग निराला ने किए हैं। परंपरागत छंदों से लेकर मुक्त छंद तक की इस यात्रा ने हिंदी कविता को समृद्ध और सुंदर बनाया है।

4.4.4 बिंब और प्रतीक

बिंब काव्य का एक ऐसा अंग है जिसका सौंदर्य सबसे पहले आकृष्ट करता है। छायावादी कवियों का प्रकृति से गहरा लगाव था-इसलिए उन्होंने अधिकांश बिंब प्रकृति से चुने हैं। प्रकृति के अतिरिक्त उन्होंने इतिहास, पुराण, धर्म तथा दर्शन आदि से भी बिंब चुने हैं। प्रसाद की कविताओं में अतीत से लिए गए ऐसे चित्र बहुत हैं। डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार, ''उन्होंने प्रायः प्राचीन संस्कृत कवियों के परंपरागत बिंबों को एक नया रूप देकर आधुनिक साँचे में ढाल दिया है। इससे उनके बिंबों में एक प्रकार का गहन क्लासिकल रंग आ गया है।'' निराला उद्दाम भावावेग के कवि हैं इसलिए उनके बिंब भी प्रायः ऐसे हैं जो तीव्र भावावेग को जगा सकें। डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार, ''व्यापकता की दृष्टि से निराला के बिंब आधुनिक जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। अकेले निराला ही ऐसे हैं, जिनकी कविताओं में अत्याधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति के क्षेत्रों से गृहीत बिंब भी कभी-कभी मिल जाते हैं।'' पंत की रुचि 'चित्रण के कौशल' में अधिक है इसलिए वे बिंबों का चयन करते हुए उसके ऐन्द्रिय बोध की ओर अधिक सजग रहते हैं। महादेवी का अनुभव संसार विस्तृत नहीं है इसलिए उनकी कविताओं में प्रयुक्त बिंब भी अधिक नहीं है और उनका भी इतनी बार दोहराव है कि वे प्रतीक-सा अर्थ देने लगते हैं।

छायावादी कवियों में प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति अधिक नहीं है परन्तु शुक्ल जी के शब्दों में ''आभ्यंतर प्रभाव-साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रचुर विकास छायावाद की काव्य-शैली की असली विशेषता है।' डॉ.नामवर सिंह का भी मानना है कि 'कल्पना प्रधान काव्य में अनूठी उपमाओं और प्रतीकों का बाहुल्य तथा भाव-विदग्ध हृदय से लाक्षणिक वक्रता-भरी भाषा का निकलना स्वाभाविक है।''

महादेवी के गीतों में प्रकृति से लिये गये प्रतीकों का प्रयोग काफी है। दीप, बादल, समीर, झंझा, फूल ऐसे ही प्रतीक हैं जो हृदय की वेदना, विरह, मिलन आदि भावों को व्यक्त करते हैं। प्रसाद के यहाँ 'कामायनी' में तो प्रायः सभी प्रमुख पात्र प्रतीकात्मक अर्थ भी रखते हैं यहाँ तक कि देव-सभ्यता, सारस्वत नगर, हिमालय, कैलास, प्रलय, संघर्ष इत्यादि भी प्रतीकों की तरह प्रयुक्त हुए हैं।

छायावाद की भाषा शैली के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिंदी के इस काव्यांदोलन ने हिंदी काव्य परंपरा को कला का भी उत्कर्ष सोपान प्रदान किया।

बोध प्रश्न

6) निम्नलिखित कथनों में से सही कथन के आगे (✓) और गलत कथन के आगे (x) का चिह्न लगाइए।

क) तीव्र भावावेग में ही उदात्त कल्पना का जन्म होता है। (सही/गलत)

ख) छायावाद में भाव, छंद और लय के अनुरूप पद रचना की प्रवृत्ति दिखाई देती है। (सही/गलत)

ग) मुक्त-छंद में लय का निषेध किया गया है। (सही/गलत)

घ) निराला को मुक्त छंद का प्रवर्तक माना जाता है। (सही/गलत)

ड.) छायावादी कवियों में सामाजिक जीवन से लिये गये बिंब अधिक हैं। (सही/गलत)

7) निम्नलिखित में से सही कथनों के आगे (✓) का चिह्न लगाइए। छायावादी कविता मेंः

क) संस्कृत के छंदों का अनुसरण किया गया। (सही/गलत)

ख) फारसी के छंदों का अनुसरण किया गया। (सही/गलत)

ग) लोक प्रचलित छंदों को नया रूप दिया गया। (सही/गलत)

घ) कुछ मध्ययुगीन छंदों को नये रूप में प्रयुक्त किया। (सही/गलत)

ड़) मुक्त-छंद का प्रयोग किया गया। (सही/गलत)

8) छायावादी काव्य-भाषा की कम-से-कम तीन विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

अभ्यास

3) छायावाद में कल्पना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताइए कि इसने छायावादी कविता को किस सीमा तक प्रभावित किया? उत्तर लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

4.5 प्रमुख छायावादी कवि

छायावाद के प्रमुख कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा की ही गणना होती है। यद्यपि इस अवधि में कई अन्य कवि भी रचनारत थे और जिन पर छायावादी भावबोध का प्रभाव भी था। ऐसे कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। हम यहाँ प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के योगदान की ही चर्चा करेंगे।

4.5.1 जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (1889-1937) ने काव्य रचना का आरंभ ब्रजभाषा से किया और उनकी आरंभिक रचनाएँ रीतिकालीन ढंग की हैं जो उनके काव्य-संग्रह 'चित्राधार' (1918) में संकलित हैं। लेकिन प्रसाद शीघ्र ही नवीन काव्य-प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो गए। उन्होंने

खड़ी बोली में रचना भी साथ-ही-साथ आरंभ कर दी थी और खड़ी बोली में लिखी कविताओं का पहला संग्रह 'कानन कुसुम' 1913 ई. में प्रकाशित हुआ था। प्रसाद ने संस्कृत, बंगला और यूरोप के स्वच्छंदतावादी काव्य से प्रेरणा ग्रहण की है। परंतु, इन प्रभावों से कहीं अधिक उन पर संपूर्ण भारतीय परंपरा का प्रभाव है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार 'भारतीय परंपरा और भारतीय संस्कृति का प्रेम ही उन्हें अतीत की ओर खींचता है। नाटकों में वे देश के अतीत की ओर जाते हैं। 'कामायनी' में भी अतीत की ओर जाते हैं तथा 'आँसू' में अपने ही प्रेम के अतीत में जाते हैं। यह अतीत प्रेम कवि प्रसाद की एक विशेषता है। यह अतीत प्रेम नहीं बल्कि संस्कृति का प्रेम है।'

प्रसाद छायावाद के सर्वप्रमुख कवियों में से हैं परंतु वे उद्दाम भावावेग के कवि नहीं हैं। उनके काव्य में 'क्लासिकीय गरिमा' है। उनके काव्य में चिंतन की भी प्रधानता है। वे प्रेम और सौन्दर्य के भी कवि हैं। 'आँसू' प्रेम की मधुर स्मृतियों की अभिव्यंजना करने वाला काव्य है। छायावादी भावबोध की रचनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं: झरना (1933) और लहर (1933)।

प्रसाद की श्रेष्ठता का एक और प्रमाण 'कामायनी' (1935) है जो आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें रूपक शैली में मानव चेतना का विकास अत्यंत प्रभावशाली रूप में दिखाया गया है। मनु और श्रद्धा के माध्यम से विकास के अनेक सोपानों को स्पष्ट किया गया है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'कामायनी मानव चेतना के विकास का महाकाव्य है अथवा मानव सभ्यता के विकास का यह विराट रूपक, साहित्य के इतिहास में एक नवीन प्रयोग है, एक अद्‌भुत उपलब्धि है।'

4.5.2 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1899-1961) की आरंभिक रचना 'जुही की कली' को 'सरस्वती' संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लौटा दिया था, यही रचना बाद में 'छायावाद और मुक्त छंद की पहली रचना स्वीकार की गयी।' निराला का पहला काव्य संकलन 'अनामिका' 1922 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें केवल सात कविताएँ थीं। निराला की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'परिमल' 1930 में प्रकाशित हुआ। गीतिका (1937) निराला के 101 गीतों का संकलन है। उनकी व्यंग्य कृति 'कुकुरमुत्ता' 1942 में प्रकाशित हुई। 1943 ई. में 'अणिमा', 1946 में 'बेला' और 'नये पत्ते' संकलन प्रकाशित हुए। अर्चना (1950), आराधना (1953) और गीतकुंज (1954) उनके अंतिम दौर के काव्य संकलन हैं। 'सांध्य काकली' अंतिम काव्य-संग्रह है जो उनकी मृत्यु के उपरांत प्रकाशित हुआ।

निराला का संपूर्ण काव्य संघर्ष और विद्रोह का काव्य है। उन्हें जीवन-पर्यंत कष्टों और अभावों का जीवन जीना पड़ा। 'सरोज स्मृति', 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' उनकी सर्वाधिक चर्चित लम्बी कविताएँ हैं। जिसकी प्रतिच्छाया उनके काव्य में दिखाई देती है। ''उन्होंने जीवन भर सामाजिक-आर्थिक शोषण और निरर्थक परंपराओं का विरोध किया, जीवन भर अंधकार की भयंकर शक्तियों से जूझते रहे, लेकिन झुके नहीं। संघर्षों ने उन्हें विद्रोही बना दिया था। उनका सारा जीवन और साहित्य इसी विद्रोह की भूमि पर पनपा है।'' (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'इतिहास' में निराला के बारे में लिखा था कि उनमें 'बहुवस्तुस्पर्शिनी' प्रतिभा है। निराला के काव्य में भावबोध और कला दोनों ही स्तरों पर अन्य छायावादी कवियों की तुलना में कहीं अधिक वैविध्य मिलता है। उनके काव्य में जीवन-संघर्ष की अभिव्यक्ति है तो जीवन के उल्लास का भी वर्णन मिलता है। वे सामाजिक यथार्थ को

कविता का विषय बनाते हैं तो प्रकृति-चित्रण में भी निपुण हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने उनकी इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए लिखा है- 'निराला के काव्य' में एक ओर उल्लास है तो दूसरी ओर क्रांति है तो दूसरी ओर प्रपत्ति। एक ओर प्रेम तो दूसरी ओर सामाजिक क्रांति। कला के क्षेत्र में विविधता का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं, 'एक ओर उन्होंने छोटे-छोटे मुक्तक लिखे हैं तो दूसरी ओर लंबी कथात्मक कविताएँ। एक ओर छंदोबद्ध रचनाएँ तो दूसरी ओर मुक्त छंद। एक ओर समाज पदावली तो दूसरी ओर सपाटबयानी'। निराला के काव्य का यह वैविध्य उनके बहु आयामी व्यक्तित्व की देन है।

4.5.3 सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत (1900-1977) ने अपने लेखन का आरंभ 1916-18 के आसपास किया था। उनकी पहली प्रकाशित रचना 'उच्छ्वास' है। उनकी आरंभिक कविताओं के संकलन का नाम 'वीणा' है। 'पल्लव' का प्रकाशन 1926 ई. में हुआ। 'ग्रंथि' नामक छोटा-सा काव्य 1920 ई. में रचा गया। इसके बाद 'गुंजन' (1932) प्रकाशित हुआ जिसमें 1926 ई. से 1931 ई. तक की रचनाएँ संकलित हैं। 'ज्योत्स्ना' पंत की काव्य नाटिका है जो प्रतीकात्मक है और पांच अंकों में विभाजित है। 'वीणा' से 'ज्योत्स्ना' तक की रचनाओं को पंत की काव्य-यात्रा का पहला चरण माना जाता है और इसे स्वच्छंदतावादी या छायावादी चरण कहा गया है।

पंत के काव्य का दूसरा चरण प्रगतिशीलता से प्रभावित है यद्यपि 'परिवर्तन' जैसी कविताओं में उसका आभास पहले चरण में भी मिल चुका है। 'युगांत' (1936), 'युगवाणी' (1939) और 'ग्राम्या' (1949) की रचनाएँ इसी प्रगतिशील चरण की कविताएँ हैं। सन् 1940 के आसपास पंत अरविंद दर्शन से प्रभावित हुए और उनका झुकाव अध्यात्म की ओर हो गया। यह पंत की काव्य-यात्रा का तीसरा चरण माना जाता है। स्वर्ण किरण (1947), स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा (1955) और वीणा (1950) आदि इस आध्यात्मिक काव्य चरण की कविताएँ हैं।

पंत जी का संपूर्ण काव्य प्राकृतिक सौंदर्य एवं शिवम् का सम्मिलित रूप है। जीवन के यथार्थ को पंतजी ने इन्हीं का सहज परिणाम माना है। मानव और प्रकृति की सर्वतोन्मुखी अभिन्नता पंत जी के कृतित्व का केंद्रीय भाव है। पंतजी में यद्यपि समय के अनुकूल अनेक परिवर्तन आए हैं, परंतु उनके काव्य कृतित्व में तरल भावावेग, सम्मोहित कर देने वाली कल्पना और मनोरम प्राकृतिक सौंदर्य सर्वत्र व्याप्त हैं। वे मूलतः सौंदर्य के कवि हैं और यह गुण ही विभिन्न चरणों में अलग-अलग रूपों में व्यक्त हुआ है। पंतजी का सौंदर्य प्रकृति की भव्यता और मानव-प्रेम पर आधारित है। ज्यों-ज्यों उत्तरोत्तर राग-तत्व कम होता गया, पंतजी की काव्योत्कृष्टता प्रभावित हुई है। पंतजी ने स्वयं भी इसका अनुभव किया है। परवर्ती काव्य में इसकी पूर्ति वे कल्पना-वैभव, भाषा सौंदर्य और अभिनव-शिल्प द्वारा करते रहे हैं।

4.5.4 महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (1907-1987) यद्यपि छायावादी काव्यधारा में कुछ देर से प्रविष्ट हुईं परंतु उनके काव्य के बिना छायावाद का अध्ययन अधूरा ही कहा जाएगा। महादेवी का प्रथम काव्य-संकलन 'नीहार' 1930 में प्रकाशित हुआ, जब छायावाद का सर्वोत्तम प्रकाश में आ चुका था। उनके काव्य संग्रह हैं-रश्मि (1932 ई.), नीरजा (1934 ई.) और सांध्यगीत (1936 ई.)। बाद में ये चारों संग्रह 'यामा' नामक संकलन में संग्रहीत होकर एक साथ प्रकाशित हुए।

महादेवी का काव्य नारी की वेदना और आत्म-पीड़ा की अभिव्यक्ति है। वे वेदना को चूँकि आध्यात्मिक शब्दावली में प्रस्तुत करती हैं इसलिए उनके काव्य को 'रहस्यवाद' की संज्ञा दी गई है। महादेवी के गीतों का प्रमुख स्वर आंतरिक मधुर वेदना है। ये सभी गीत भाव एवं शिल्प के स्तर पर मर्मस्पर्शी हैं। उनमें प्रमुख रूप से नारी वेदना की तीव्रता का चित्रण है जो प्रायः विश्वव्यापी बन जाता है। व्यक्तिगत माध्यम से जन्मी वेदना विश्वजनीन हो जाती है। विवशता, एकाकीपन और निस्सहायता मुख्य हो उठता है। महादेवी के काव्य पर बुद्ध के दुःखवाद का भी असर है।

बोध प्रश्न

9) निम्नलिखित में से सही कथन चुनिए और उनके आगे (✓) का चिह्न लगाइए।

क) निराला का काव्य, संघर्ष और विद्रोह का काव्य है। ( )

ख) सुमित्रानंदन पंत के आरंभिक काव्य में प्रकृति के प्रति जिज्ञासा और कुतूहल का भाव व्यक्त हुआ है। ( )

ग) प्रसाद के काव्य में रहस्यवाद की प्रधानता है। ( )

घ) महादेवी वर्मा के काव्य में चिंतन की प्रधानता है। ( )

10) प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के काव्य की एक-एक ऐसी विशेषता बताइए जो अन्य कवियों में उतनी प्रमुखता से व्यक्त न हुई हो।

....

....

....

....

अभ्यास

4) छायावाद के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर उसके महत्व को प्रतिपादित कीजिए। उत्तर लगभग सौ शब्दों में लिखिए।

4.6 सारांश

इस इकाई में आपने 'छायावाद' नामक काव्यधारा का परिचय प्राप्त किया है। छायावाद आधुनिक हिंदी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है जिसका उदय 1916-18 के आसपास हुआ और 1935-36 में प्रगतिवाद के उदय के साथ इसका पर्यवसान हो गया। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता से भिन्न यह वैयक्तिक भावनाओं का काव्य था। मुक्ति की जो आकांक्षा उस युग की नयी पीढ़ी में पैदा हुई थी, वही काव्य के रूप में 'छायावाद' बनकर अवतरित हुई। छायावाद प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की राष्ट्रीय परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। आप इस इकाई को पढ़कर छायावाद की पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर सकते हैं।

छायावादी काव्य मुक्ति का, स्वाधीनता का काव्य है। वह वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का काव्य है। आत्माभिव्यक्ति और आत्म-प्रसार का काव्य है। इसी मुक्ति की अभिलाषा ने छायावादी कवियों को प्रकृति से प्रेम करना सिखाया, रूढ़ियों और वर्जनाओं

से संघर्ष करना सिखाया, नारी को समानता का अधिकार देना सिखाया, राष्ट्र के प्रति गौरव और प्रेम का भाव जगाया और ये ही विषय उनके काव्य की अंतर्वस्तु बने। छायावादी कवि यह तो समझ गये थे कि बंधन क्या है परंतु मुक्ति का मार्ग उनके सामने स्पष्ट नहीं था। यही अस्पष्टता रहस्य-भावना के रूप में व्यक्त हुई। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों की विशेषताओं का वर्णन कर सकते हैं।

मुक्ति की आकांक्षा काव्य-शिल्प के क्षेत्र में व्यक्त हुई। मानसिक स्वाधीनता ने कवियों को कल्पनाशील बनाया। उन्होंने काव्य के लिए नए-नए क्षेत्र ढूँढ़े। नई भाषा ढूँढ़ी, नया शिल्प और नए छंद तलाशे और जब छंद का बंधन महसूस हुआ तो मुक्त छंद में भी रचना की। छायावादी कवियों की भाषा सरस, कोमल और सहज थी परंतु आवश्यकता अनुसार उसमें विराट, कठोर तथा उद्दाम भावनाओं को व्यक्त करने की शक्ति भी थी। उन्होंने मुक्तक लिखे, गीत लिखे, लंबी कविताएँ लिखीं। 'तुलसीदास' जैसा खंड काव्य दिया तो 'कामायनी' जैसा महाकाव्य भी रचा। काव्य शिल्प के क्षेत्र में छायावाद ने हिंदी कविता में क्रांति ला दी। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस दृष्टि से छायावाद के योगदान का मूल्यांकन कर सकते हैं।

छायावाद ने प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी जैसे महान कवि दिए। प्रसाद का काव्य प्रेम और सौंदर्य का काव्य है, उसमें क्लासिकीय गरिमा है, वे एक बौद्धिक कवि भी हैं। उन्होंने गीत लिखे, मुक्तक लिखे। 'आँसू' जैसा भावनात्मक काव्य लिखा, तो 'कामायनी' जैसा महाकाव्य भी, जो आज भी आलोचकों और विचारकों के लिए एक चुनौती है। निराला संघर्ष और विद्रोह के कवि हैं। भावबोध और कला दोनों दृष्टियों से जितनी विविधता उनमें है उतनी किसी अन्य कवि में नहीं। छंद और भाषा की दृष्टि से भी उनमें नए-नए प्रयोग मिलते हैं। निराला ने बाद की पीढ़ी को जितना प्रभावित किया, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं किया। सुमित्रानंदन पंत शिवत्व और सौंदर्य के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति से गहरी प्रेरणा ली। प्रगतिशीलता से भी वे प्रभावित रहे और बाद में अरविन्द के प्रभाव से वे अध्यात्म की ओर भी झुके लेकिन उनकी समस्त काव्य यात्रा शिव और सौंदर्य की ही यात्रा है। महादेवी वर्मा आत्म वेदना की चित्रकार हैं। चिरंतन वेदना और एकाकीपन उनके काव्य की आधारभूत विशेषता है। वे अपनी वेदना को रहस्यवादी शब्दावली में प्रस्तुत करती हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद इन सभी प्रमुख कवियों के काव्य व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दे सकते हैं।

4.7 शब्दावली

स्वच्छंदतावाद – हिंदी में स्वच्छंदतावाद शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'रोमांटिसिज्म' के अर्थ में होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में श्रीधर पाठक की नवीन शैली की कविताओं के लिए इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया। स्वच्छंदतावाद की सामान्य विशेषता अतिशय कल्पनाशीलता और तीव्र संवेदनशीलता है। स्वच्छंदतावादी कवियों में 'सामाजिक बंधनों को तोड़कर जीवन की स्वच्छंद भूमि में विचरण करने की लालसा होती है।' स्वच्छंदतावाद का आरंभ यूरोप में हुआ। इंग्लैण्ड में अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण और उन्नीसवीं शती के आरंभिक चरण में ऐसा काव्य रचा गया, जिसे स्वच्छंदतावाद के नाम से जाना गया। इस धारा के प्रमुख कवियों में वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, कीट्स, बायरन और शैली का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इन

कवियों की रचनाओं को पढ़ने का सुयोग छायावादी कवियों को भी मिला। चूँकि बाह्य परिस्थितियाँ और आंतरिक भावनाएँ दोनों में समानता थीं, इसलिए हिंदी के कवियों ने इन कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया।

चित्र-भाषा शैली – कविता में भाषा के द्वारा चित्र बनाना, इसे ही दूसरे शब्दों में बिंब कह सकते हैं। जिस कविता में चित्र-भाषा या बिंब की प्रधानता हो उसे चित्रभाषा शैली की कविता कहेंगे।

रोला – मात्रिक सम छंद का एक भेद। इस छंद के प्रति चरण में 24 मात्राएँ होती हैं।

घनाक्षरी – इसे कवित्त भी कहते हैं। इसे मुक्तक, वर्णिक छंद की कोटि में माना जाता है। इसमें 31 अक्षर होते हैं, 16 और 15 अक्षर पर यति होती है।

प्रपत्ति – प्रपत्ति का अर्थ है अनन्य भक्ति। भक्ति भगवान के अनुग्रह से उत्पन्न होती है और भगवान का अनुग्रह उनकी शरण में जाने से मिलता है। इसे ही प्रपत्ति कहते हैं।

दुःखवाद – महात्मा बुद्ध ने कहा था कि जीवन में दुःख ही सत्य है और दुःख का कारण इच्छा या तृष्णा है। दुःख की इसी अवधारणा को दुःखवाद कहा जाता है।

4.8 उपयोगी पुस्तकें

रामचंद्र शुक्ल : *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी।

हजारी प्रसाद द्विवेदी : *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. नामवर सिंह : *छायावाद,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. नामवर सिंह : *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ,* नयी दिल्ली।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : *आधुनिक हिंदी कविता,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

4.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) संकेत : i) रहस्यवाद के अर्थ में, ii) काव्य शैली के अर्थ में

2) क) रामविलास शर्मा ख) नंददुलारे वाजपेयी ग) रामचंद्र शुक्ल घ) नामवर सिंह

3) क) सही ख) गलत ग) गलत घ) सही

4) घ)

5) छायावादी कवियों में मुक्ति की आकांक्षा इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि नये विकास ने उन्हें यह समझ दी कि पुराने मूल्यों और रूढ़ियों से आत्म-विकास संभव नहीं है। केवल स्वतंत्रता का भाव ही आत्म-विकास का मार्ग है। मुक्ति की आकांक्षा ने

उन्हें बाह्य और आंतरिक दोनों बंधनों का अनुभव कराया। राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक बंधनों ने उन्हें स्वाधीनता का समर्थक बनाया।

6) क) सही ख) सही ग) गलत घ) सही ङ) गलत

7) क) गलत ख) गलत ग) सही घ) सही ङ) सही

8) i) सरलता, कोमलता और सहजता

ii) तत्सम शब्दों का प्रयोग

iii) लंबे समास पदों के स्थान पर छोटे पदों का प्रयोग

9) क) ✓ ख) ✓ ग) ✕ घ) ✕

10) प्रसाद : प्रेम और सौदर्य के कवि/बौद्धिक कवि

निराला : उल्लास और उद्दाम भावावेग के कवि/संघर्ष और विद्रोह के कवि

पंत : शिव और सौंदर्य के कवि

महादेवी : आत्म वेदना और विरह की कवयित्री

अभ्यास

1) द्रष्टव्य : उपभाग 4.2.2

2) द्रष्टव्य : उपभाग 4.3.1

3) द्रष्टव्य : उपभाग 4.4.1

4) हिंदी में छायावाद का उदय सन् 1920 के आसपास हुआ। लगभग इसी समय देश में राष्ट्रीय आंदोलन शहरों और गांवों तक पहुँचा। इससे पूर्व यह शहरी उच्च वर्ग तक ही सीमित था। इस आंदोलन ने लोगों में स्वाधीनता की आकांक्षा जगाई। लकिन अब भी यह स्पष्ट नहीं था कि स्वतंत्रता का स्वरूप कैसा हो? छायावादी काव्य में भी अपने युग का यह अंतर्विरोध कायम रहा। इस काव्य में 'जहाँ एक तरफ उल्लास, नये विकास और नये प्रसार की कामना, देश-भक्ति की नयी प्रेरणा, समानता और विश्व बंधुत्व के भाव हैं, वहीं दूसरी तरफ उसमें पलायन, रहस्यवाद, प्राचीनता, प्रेम, निराशा, व्यक्तिवाद, काल्पनिक स्वर्ग रचना आदि की प्रवृत्तियाँ भी मौजूद हैं'। (रामविलास शर्मा) इसका कारण यही था कि उल्लास, जिज्ञासा और आशा-अभिलाषा के बावजूद भविष्य के प्रति अस्पष्टता और अमूर्तता ही थी। 'कौन तम के पार रे कह!' की जिज्ञासा छायावाद का मुख्य स्वर रहा। परंतु सन् 30 के बाद जब राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों मजदूरों की शिरकत बढ़ी, स्वतंत्रता के साथ जब स्वतंत्र भारत कैसा हो, की बहस भी तीव्र हुई तो भविष्य की एक स्पष्ट तस्वीर भी उभरने लगी। छायावादी कवियों ने इस नये उभरते स्वर को पहचाना और प्रायः सभी छायावादी कवि अपनी युग की सीमाओं का विस्तार कर प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हुए। छायावाद राष्ट्रीय आंदोलन के एक दौर की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है तो प्रगतिवाद उसी का अग्रिम चरण। छायावाद का महत्व इसी ऐतिहासिक संदर्भ में है।

इकाई 5 उत्तरछायावाद

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उत्तरछायावादी काव्य की पृष्ठभूमि

- 5.2.1 छायावाद और उत्तरछायावादी काव्य
- 5.2.2 उत्तरछायावाद कालीन परिस्थितियाँ
- 5.2.3 उत्तरछायावादी काव्य का अभिप्राय

5.3 उत्तरछायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ

- 5.3.1 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता
- 5.3.2 प्रेम और मस्ती का काव्य
- 5.3.3 हास्य-व्यंग्य का काव्य

5.4 उत्तरछायावादी कविता की विशेषताएँ

- 5.4.1 युगीन चेतना की अभिव्यक्ति (राष्ट्र-प्रेम)
- 5.4.2 अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा
- 5.4.3 प्रेम और मानवता के स्वर

5.5 उत्तरछायावादी काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ

- 5.5.1 काव्य-भाषा
- 5.5.2 काव्य-शिल्प

5.6 प्रमुख उत्तरछायावादी कवि

5.7 उत्तरछायावादी कविता का महत्व

5.8 सारांश

5.9 उपयोगी पुस्तकें

5.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप उत्तरछायावादी कविता का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- उत्तरछायावादी कविता के उदय के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे ;
- उत्तरछायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कर सकेंगे;

- उत्तरछायावादी काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों का संक्षिप्त परिचय दे सकेंगे; और
- उत्तरछायावादी काव्य का महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

हमने इससे पूर्व की इकाई में आपको बताया था कि छायावाद का आरंभ 1920 के आसपास से और पर्यवसान 1936 के आसपास माना जाता है। द्विवेदीयुग के बाद उभरने वाली प्रमुख काव्यधारा छायावाद ही थी और छायावाद के बाद प्रगतिवाद। परन्तु इस दौरान काव्य की कुछ ऐसी प्रवृत्तियों का भी उदय हुआ जिन्होंने यद्यपि स्वतंत्र काव्यांदोलन का रूप तो धारण नहीं किया परन्तु आधुनिक हिन्दी काव्यधारा को समृद्ध बनाने में उनका योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इन प्रवृत्तियों का उदय मुख्य रूप से तीसरे दशक में हुआ और यह भी कह सकते हैं कि ये छायावाद और प्रगतिवाद के समानांतर प्रवाहित होती रहीं। इन प्रवृत्तियों का उपर्युक्त दोनों काव्यधाराओं से विरोध नहीं था, फिर भी इन्हें स्वतंत्र-काव्य-प्रवृत्तियों के रूप में ही पहचाना गया। इस काव्यधारा में मुख्य रूप से तीन प्रवृत्तियाँ थीं-राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावना, मस्ती और प्रेम की भावना तथा हास्य-व्यंग्य की भावना। इन तीनों प्रवृत्तियों ने कई महत्वपूर्ण कवि हिन्दी काव्य को दिए जिनमें बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर, सियारामशरण गुप्त, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, हरिकृष्ण शर्मा 'प्रेमी', सुभद्रा कुमारी चौहान आदि प्रमुख हैं। इस इकाई में हम इस काव्यधारा का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

5.2 उत्तरछायावादी काव्य की पृष्ठभूमि

छायावाद के उत्तरकाल में उभरी इन काव्य-प्रवृत्तियों का संबंध हमारे देश की तत्कालीन परिस्थितियों से है। उत्तरछायावाद की इन प्रवृत्तियों के उदय को हमें छायावाद के संदर्भ में देखना चाहिए।

5.2.1 छायावाद और उत्तरछायावादी काव्य

छायावाद पर विचार करते हुए हमने बताया था कि छायावाद का संबंध मध्यवर्ग की मुक्ति की आकांक्षा से है। मुक्ति की यही आकांक्षा तीव्र भावावेग और उदात्त कल्पनाशीलता के माध्यम से छायावादी कविता बनकर साकार हुई। मुक्ति की यह आकांक्षा आत्म-अभिव्यक्ति और आत्म-प्रसार का भी आधार बनी। कवि को यह मुक्ति प्रकृति में दिखाई दी, इसलिए प्रकृति उसके लिए प्रेरणा स्रोत बनी। राष्ट्र की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों का बंधन, नारी की परतंत्रता भी छायावादी कवियों की स्वतंत्रता की भावना में बाधक थी इसलिए उन्होंने राष्ट्र की स्वतंत्रता, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति और नारी स्वतंत्रता का भी आह्वान किया। छायावाद की स्वाधीनता की यह आकांक्षा बाद में लगातार मुखरित होती गयी। सन् 1930 के आसपास भारत का राष्ट्रीय आंदोलन न केवल व्यापक हुआ वरन् तीव्र भी हुआ। इससे जहाँ लोगों में राष्ट्रीय भावना और मजबूत हुई, वहीं आंदोलन की तीव्रता ने लोगों में भविष्य के प्रति आशा और उत्साह का संचार भी किया। जीवन के हर क्षेत्र में आत्मविश्वास और उत्साह का वातावरण बना। भारत गुलाम अवश्य था, लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन की इस लहर ने लोगों को मानसिक रूप से स्वतंत्र कर दिया

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

था, विशेष रूप से युवा पीढ़ी को। युवा पीढ़ी का यही उत्साह, जोश और आत्मविश्वास उत्तरछायावादी काव्य का आधार बना। छायावाद की वेदना, करुणा अब विलुप्त सी हो गयी थी।

5.2.2 उत्तरछायावादी परिस्थितियाँ

गांधी जी के आगमन के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन शिक्षित उच्च मध्यवर्ग की सीमाओं से बाहर निकलकर जनता के व्यापक हिस्सों को अपने में समेटने लगा। इसने लोगों को यह अहसास कराया कि स्वतंत्रता क्यों आवश्यक है। एक ओर इस युग के कवियों ने राजनीतिक पराधीनता की समाप्ति के लिए जनता का आह्वान किया, वहीं दूसरी ओर देश की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को भी उजागर किया। बढ़ते राष्ट्रीय आंदोलन ने यह अनुभव कराया कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय एकता की कितनी आवश्यकता है। इसलिए इस दौर में भारत की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता को भी स्वर दिया गया।

1930 के दशक में जो नई, शिक्षित युवा पीढ़ी सामने आयी, उसका दृष्टिकोण ज्यादा आधुनिक और राष्ट्रवादी था। वह पुराने जीवन-मूल्यों से मुक्त था और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उसमें पर्याप्त आत्म-विश्वास था। पुराने मूल्यों और रूढ़ियों के प्रति उसमें उतना भी मोह नहीं था, जितना हमें छायावादी कवियों में दिखाई देता है। इसलिए प्राचीन रूढ़ियों पर कवियों ने निर्मम प्रहार भी किए। जिंदादिली की भावना ने उन्हें हास्य-व्यंग्य की ओर भी प्रेरित किया।

5.2.3 उत्तरछायावादी काव्य का अभिप्राय

उत्तरछायावादी काव्य का तात्पर्य है छायावाद के बाद का काव्य। परन्तु यहाँ इस काव्य से तात्पर्य उन काव्य-प्रवृत्तियों से है जो 1930 और 1940 में लोकप्रिय हुईं परन्तु जिन्होंने काव्य आंदोलन का रूप धारण नहीं किया। इस काव्य-धारा में मुख्य रूप से तीन काव्य-प्रवृत्तियों को परिगणित किया जाता है। ये हैं-राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना को व्यक्त करने वाला काव्य, प्रेम और मस्ती का काव्य तथा हास्य-व्यंग्य का काव्य। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य में कवियों ने एक ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष का आह्वान किया, तो दूसरी ओर उन्होंने देश में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक विषमता के विरुद्ध भी आवाज उठाई। प्रेम और मस्ती का काव्य वस्तुतः जीवन के उल्लास और जोश का काव्य है। इस काव्य में प्रेम की मांसलता और भावनाओं का आवेश प्रमुख रहा। हास्य-व्यंग्य की कविताओं में दोनों धाराएँ मिलती हैं। हास्यरस प्रधान रचनाएँ भी लिखी गईं और सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों पर तीखे प्रहार करने वाली व्यंग्य रचनाएँ भी लिखी गईं।

मुख्य बात यह है कि इस काव्यधारा में कवियों ने राष्ट्रीय भावना, प्रणय भावना या सामाजिक यथार्थ, जिस किसी को काव्य का विषय बनाया, उसके प्रति उनका दृष्टिकोण सहज भावनात्मक ही अधिक रहा। आमतौर पर इन कवियों में वैचारिक गहनता या जीवन को देखने की सूक्ष्म दृष्टि का अभाव ही मिलता है। इनका मुख्य बल अपने भावों के संप्रेषण पर अधिक है और उद्देश्य सामान्य पाठक तक अपनी भावनाओं को पहुँचाना है। इसलिए इन कवियों ने प्रायः गीतात्मकता का सहारा लिया है और ऐसी सहज और सरल भाषा में काव्य रचा है जो आम पाठक को भी संप्रेषित हो सके।

5.3 उत्तरछायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ

यहाँ हम उत्तरछायावादी कविता की तीन प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियों का विवेचन करेंगे।

5.3.1 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य

उत्तरछायावादी काल राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के ज्वार का काल था। इस समय स्वाधीनता के लिए संघर्ष तीव्र गति से चल रहा था। इस संषर्घ से कवि और लेखक भी अछूते नहीं रहे। 1930 के आसपास हिन्दी लेखकों की एक ऐसी पीढ़ी अस्तित्व में आई जिन्होंने काव्य-रचना के साथ-साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष में भी भाग लिया। बालकृष्ण शर्मा "नवीन", माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ऐसे ही कवि थे जिन्होंने अपने काव्य में राष्ट्र-प्रेम की भावना को अभिव्यक्त किया, साथ ही स्वयं भी देश की आजादी के संघर्ष में भाग लिया और जेल गए। इसलिए इन कवियों की राष्ट्रीय भावना की कविताओं में सच्चाई और भावावेश दोनों दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय भावनाओं की कविताओं में राष्ट्र के प्रति गहरी समर्पण भावना और बलिदान की इच्छा व्यक्त हुई। उनकी प्रख्यात कविता 'पुष्प की अभिलाषा' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। फूल न सुरबाला के गहनों में गुँथना चाहता है, न प्रेमी माला में बिंधने की कामना उसमें है। सम्राट के शव अथवा देवों के सिर पर चढ़ने की इच्छा भी उसमें नहीं है। उसकी तो केवल एक ही कामना हैः

> मुझे तोड़ लेना वनमाली
> उस पथ पर तुम देना फेंक
> मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
> जिस पथ पर जावें वीर अनेक।

इन कवियों ने लोगों में राष्ट्र के लिए बलिदान भावना को तो व्यक्त किया ही, साथ ही जनता की वास्तविक दीन-हीन दशा को चित्रित करते हुए उनमें जागृति लाने का प्रयास भी किया है। देश की शोचनीय दशा ने प्रायः सभी कवियों की संवेदना को झकझोर दिया था। रामनरेश त्रिपाठी की कविता में इसी दशा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई हैः

> धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला घर-घर में
> मांस नहीं है, निरी साँस है, शेष अस्थिपंजर में।
> अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं, रहने का नहीं ठिकाना,
> कोई नहीं किसी का साथी, अपना और विराना।

इन कवियों ने वर्तमान की दीन-हीन दशा के साथ अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा भी की। इन कवियों ने ऐसी अनेक रचनाएँ लिखीं जिनमें भारत के प्राचीन वैभव का वर्णन था। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विजय दशमी' में राम की यशोगाथा गाई, रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'पाटलिपुत्र की गंगा से' तथा 'मगधमहिमा' में महात्मा गौतम के बुद्धत्व की कथा का वर्णन किया है। सियारामशरण गुप्त की 'मौर्यविजय', उदयशंकर भट्ट की 'तक्षशिला' तथा सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाओं में प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय वीरों का यशोगान किया गया है। सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' रचना इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

इन कवियों ने राष्ट्र मुक्ति के लिए कविता के द्वारा क्रांति का आह्वान भी किया। दिनकर की कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैंः

उठ भूषण की भावा रंगिनी, लेनिन के दिल की चिंगारी।
युग मुर्दित यौवन की ज्वाला, जाग-जाग रही क्रांति कुमारी।।

बालकृष्ण शर्मा नवीन का स्वर इन कवियों में सर्वाधिक सशक्त एवं ओजपूर्ण था। दिनकर की 'हुँकार' में राष्ट्रीय क्रांति का ओजपूर्ण आह्वान है। स्वतंत्रता के संघर्ष को गतिशील एवं ताकतवर बनाने के लिए इन कवियों ने जातीय एकता पर भी बल दिया। सभी जातियों एवं संप्रदायों में एकता के बिना स्वतंत्रता नहीं प्राप्त की जा सकती, यह इन कवियों के सामने स्पष्ट था। अंग्रेज सरकार लगातार कोशिश कर रही थी कि हिंदुओं और मुसलमानों में फूट पड़ जाए, जिसमें वे सफल भी रहे। परन्तु इन कवियों ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। सियारामशरण गुप्त ने कहा – 'हिन्दू-मुसलमान दोनो ही एक डाल के हैं दो फूल'। सांप्रदायिक सद्भाव की यह भावना यद्यपि बलवती रही परन्तु वास्तविकता में यह फलीभूत न हो सकी।

5.3.2 प्रेम और मस्ती का काव्य

छायावादी काव्य में भी प्रणय भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है परन्तु उनका प्रेम धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म की ओर, शरीर से अशरीर की ओर तथा लौकिक से अलौकिकता की ओर अग्रसर होता गया। जबकि उत्तरछायावादी काल के इन कवियों के यहाँ प्रेम केन्द्रीय शक्ति की तरह है। बच्चन ने प्रेम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है –

यदि प्रणय जगा न होता इस निशा में
सुप्त होती विश्व की संपूर्ण सत्ता।
वह मरण की नींद होती जड़ भयंकर
और उसका टूटना होता असंभव
प्यार से संसार सोकर जागता है
इसलिए है प्यार की जग में महत्ता।

(मिलन यामिनी)

डॉ. तारकनाथ बाली ने छायावाद और उसके बाद के काव्य के प्रेम में एक अंतर व्यक्तिवाद का माना है। यद्यपि दोनों काव्य की मूल वृत्ति व्यक्तिनिष्ठ है फिर भी दोनों में अंतर है। उनके अनुसार, 'छायावादी व्यक्ति-चेतना शरीर से ऊपर उठकर मन और फिर आत्मा का स्पर्श करने लगती है जबकि इन कवियों में व्यक्तिनिष्ठ चेतना प्रधानरूप से शरीर और मन के धरातल पर ही व्यक्त होती रही है। इन्होंने प्रणय को ही साध्य के रूप में स्वीकार करने का प्रयास किया है। छायावादी काव्य जहाँ प्रणय को जीवन की यथार्थ-विषम व्यापकता से सँजोने का प्रयास करता है वहाँ प्रेम और मस्ती का यह काव्य या तो यथार्थ से विमुख होकर प्रणय में तल्लीन दिखायी देता है, या फिर जीवन की व्यापकता को प्रणय की सीमाओं में ही खींच लाता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र) नवीन जी की 'साकी' शीर्षक कविता में यही दर्शन व्यक्त हुआ है। बच्चन का 'मधुबाला', 'मधुशाला' में भी यही दर्शन है।

यह चाँद उदित होकर नभ में, कुछ ताप मिटाता जीवन का,
लहरा-लहरा यह शाखाएँ, कुछ शोक भुला देती मन का,
कल मुर्झाने वाली कलियाँ हँसकर कहती हैं, मग्न रहो,

बुलबुल तक की फुनगी पर से, संदेश सुनाती यौवन का
तुम देकर मदिरा के प्याले, मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का, उपचार न जाने क्या होगा।
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा।

(मधुबाला)

प्रेम और मस्ती के इस काव्य में जीवन के प्रति किसी व्यापक दृष्टि का आभास नहीं मिलता। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों ने जीवन में एक ऐसी प्रेम-भावना की आवश्यकता पर बल दिया है, जिसमें न आध्यात्मिक अमूर्तता हो, और न ही लौकिक संकीर्णता। शराब, साक़ी, मदिरालय, प्याला आदि प्रतीकों के माध्यम से इन कवियों ने एक धर्मनिरपेक्ष और जीवन-सापेक्ष दृष्टिकोण को लोक प्रिय बनाने का प्रयास किया है। बालकृष्ण शर्मा नवीन की 'साक़ी' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिएः

हो जाने दे गर्क नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क़ नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साक़ी अब कैसा विलंब भर-भरला तन्मयता-हाला।

इन कवियों ने प्रेम की अभिव्यक्ति में द्विवेदीयुगीन नैतिकता और छायावादी रहस्यात्मकता दोनों का परित्याग किया, किंतु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इन्होंने 'मुक्त निर्बंध-भोग ' का समर्थन किया। इन कवियों ने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए मदिरालय से संबंधित प्रतीकों का इस्तेमाल किया, इसलिए काव्य की इस प्रवृत्ति को 'हालावाद' की संज्ञा भी दी गई है।

वस्तुतः प्रेम और मस्ती का यह काव्य स्वच्छंदतावादी भावधारा का ही विस्तार है। स्वानुभूति और तीव्र भावावेग इस काव्य की विशेषता है। एक और गुण जो इस काव्य में नजर आता है, वह है उल्लास और जोश का भाव। यह जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का परिणाम है - आगे बढ़ना और बढ़ते चले जाना। परन्तु इस भाव-दृष्टि की सीमा यह है कि कवियों के सामने यह स्पष्ट नहीं है कि जीवन का लक्ष्य क्या है। भगवतीचरण वर्मा की निम्नलिखित कविता इस भावना को सशक्त ढंग से व्यक्त करती है :

हम दीवानों की क्या हस्ती,
है आज यहाँ, कल वहाँ चले,
मस्ती का आलम साथ चला,
 हम धूल उड़ाते जहाँ चले,
 आए बनकर उल्लास अभी
आँसू बनकर बह चले अभी,
सब कहते ही रह गए, अरे,
तुम कैसे आए, कहाँ चले?
किस ओर चले? यह मत पूछो
चलना है, बस इसलिए चले,
जग से उसका कुछ लिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले

(दीवानों की क्या हस्ती)

5.3.3 हास्य-व्यंग्य का काव्य

इस युग की तीसरी प्रवृत्ति हास्य-व्यंग्य प्रधान कविताओं की है। हास्य-व्यंग्य के लेखन की प्रवृत्ति भारतेन्दु युग में अत्यधिक प्रबल थी, परन्तु द्विवेदीयुग में आर्यसमाजी नैतिकतावादी दृष्टिकोण का जोर होने के कारण हास्य व्यंग्य की धारा क्षीण-सी हो गई थी। यद्यपि उत्तरछायावादी युग में हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में हुईं परन्तु महत्व की दृष्टि से उन्हें विशेष उल्लेखनीय नहीं कहा जा सकता।

इस युग के हास्य-व्यंग्य लेखन में मुख्यतः समाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में व्याप्त पाखंड तथा भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है। कभी-कभी राजनीति को भी व्यंग्य का माध्यम बनाया गया है। इस तरह के काव्य में 'हास्य' की मुखरता और व्यंग्य की तीव्रता स्वभाविक रूप से व्यक्त हुई है। परन्तु इस युग के इस तरह के काव्य की सीमा यह है कि जीवन-यथार्थ की गहरी समझ के अभाव में और व्यापक जीवन दृष्टि न होने के कारण इन कविताओं में न तो निराला के इसी दौर के काव्य में व्यक्त व्यंग्य जैसी गहराई आई है और न ही प्रगतिवादी दौर में रामविलास शर्मा, नागार्जुन आदि कवियों जैसी गहरी सामाजिक दृष्टि। यही कारण है कि यह काव्य हल्की-सी चुटकी लेकर रह जाता है।

इस युग के प्रमुख हास्य-व्यंग्यकारों में हरिशंकर शर्मा, पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानंद आदि प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न

1. उत्तरछायावादी कविता काव्य के समय की राष्ट्रीय परिस्थितियों की मुख्य विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

2. उत्तरछायावादी युग के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावनाओं को व्यक्त करने वाले कवियों की मुख्य विशेषता बताइए, जो उन्हें पूर्व के कवियों से अलग करती हैं?

....

....

....

....

....

....

....

5.4 उत्तरछायावादी कविता की विशेषताएँ

5.4.1 युगीन चेतना की अभिव्यक्ति (राष्ट्र-प्रेम)

भारत के इतिहास में यह समय अत्यंत उथल–पुथल का समय था। संपूर्ण राष्ट्र में स्वातंत्र्य के प्रति संघर्ष व्याप्त हो चुका था। उत्तरछायावादी कवियों ने युग की राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर स्वाधीनता आंदोलन के साथ–साथ उस युग में घटने वाली घटनाओं और स्थितियों को ध्यान में रखकर कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं में अतीत के गौरव गीत दिखाई देते हैं। अतीत के गौरव गान से राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने का कार्य इन कविताओं के माध्यम से किया गया –

> है आसन्न भूत अति उज्ज्वल है अतीत गौरवशाली,
> औ छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
> नव ऊषा सी विजय हमारी विहंस रही है मतवाली,
> हम मानव को मुक्त करेंगे, यही विधान हमारा है।
> भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।।

राष्ट्रीय आंदोलन से संबद्ध विविध घटनाओं और आंदोलन के फलस्वरूप उत्पन्न विविध स्थितियों का चित्रण और आह्वान इन कविताओं में देखा जा सकता है–

> नहीं बेड़ियों की झन–झन है, यह है जीवन–मंत्र,
> काँप रहा है सुनकर जिसको क्षण–क्षण शासन–तंत्र,
> वे पशुबल के अधिनायक क्या जाने इसका तत्व!
> निज सर्वस्व होमकर ही है मिलता मुक्ति–निजत्व!

रामनरेश त्रिपाठी देश के नवयुवकों का आह्वान करते हैं। उन्हें देश की दशा के प्रति सचेत करते हुए उनके कर्तव्यों की याद दिलाते हैं –

> क्रुद्ध सिंह सम निकल प्रकट कर, अतुलित भुजबल विषम पराक्रम।
> युद्ध–भूमि में वे बैरी का, दर्प दलन कर लेते हैं क्षम।
> या स्वतंत्रता की वेदी पर, कर देते हैं, प्राण निछावर।
> तक नवयुक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

वे देश के नवयुवकों को स्वतंत्रता और परतंत्रता का भेद भी समझाते हैं। उनकी कविताओं में अन्याय और शोषण का विरोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है इसके साथ–साथ स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु अन्य देशों में किए गए प्रयासों का भी वे प्रशंसा करते हैं और देश के नवयुवकों को उनसे सीख लेने का आह्वान करते हैं।

5.4.2 अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा

उत्तरछायावादी कवियों ने जन–जन में राष्ट्रीयता के प्रति जागरण का उद्बोधन किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने भारत के अतीत का गौरव गान और सामान्य जन में राष्ट्रीय चेतना और प्रेम की भावना संचरित की। उनकी कविताओं में भारतीय संस्कृति और पौराणिक मिथक के उदाहरणों द्वारा उद्बोधन किया गया है। रामनरेश त्रिपाठी भारत के अतीत के गौरव को प्रतिष्ठित कर 'निष्पक्ष न्यायकारी जन' को जाग्रत करते हैं –

विद्वान, और योगी, गुरु राजनीतिकों के,
श्रीकृष्ण थे जहां पर, वह देश कौन–सा है?
विजयी बली जहाँ के बेजोड़ सूरमा थे,
गुरुद्रोण, वीर अर्जुन, वह देश कौन–सा है?
निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े–लिखे हैं,
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौन–सा है?

गौरवशाली अतीत का वर्णन करने के साथ–साथ अतीत से वर्तमान की तुलना भी की गई है–

याद करो अपने गौरव को
थे तुम कौन, कौन हो अब तुम
राजा से बन गए भिखारी
फिर भी मन में तुम्हें नहीं गम?
पहचानो फिर से अपने को
मेरे भूखों मरने वाले! (सोहनलाल द्विवेदी)

अतीत की स्मृतियाँ, क्रांति की आकांक्षा और राष्ट्रीय आंदोलन में युवाओं की सक्रिय भागीदारी का संदेश भी संचरित करती हैं –

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके तुझमें क्यों लगी आग?
ऐ कुरुक्षेत्र! अब जाग जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त!
वीरों का कैसा हो बसन्त?

हल्दी घाटी के शिला खंड,
ऐ दुर्ग सिंहगढ़ के प्रचंड,
राणा सांगा का कर घमंड,
दे जगा आज स्मृतियां ज्वलन्त,
वीरों का कैसा हो बसन्त? (सुभद्रा कुमारी चौहान)

देश के अतीत का गौरव गान करने के साथ–साथ कवियों ने वर्तमान के प्रति क्षोभ भी व्यक्त किया है।

5.4.3 प्रेम और मानवता के स्वर

देश के अतीत का गौरव गान करने के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण स्वर और भी सुनाई देता है और वह है प्रेम और मानवता का। उस युग की यह आवश्यकता थी कि व्यक्ति, मानव मात्र के कल्याण के लिए पूर्ण समर्पित हो। समर्पण और प्रेम की यह भावना साम्प्रदायिक सद्भाव और देश की अखंडता के रूप में भी दिखाई देती है –

उत्तर से दक्खिन, पूरब से
पच्छिम तक तुम तक एक, अरे!
भेद भाव से परे एक ही
रही तुम्हारी टेक अरे!
एक देश है, एक प्राण तुम,
तुम हो नहीं अनेक अरे!
खोलो निज लोचन, देखो यह
खिली एकता ज्योति प्रखर!

5.5 उत्तरछायावादी काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ

द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता ने उस युग की काव्य भाषा को जो तत्सम प्रधान, समास बहुल एवं गद्यात्मक रूप प्रदान किया था, उसमें छायावाद ने आमूल परिवर्तन कर दिया था। छंद और शैली के क्षेत्र में भी छायावाद ने हिन्दी कविता को नयी दिशा प्रदान की। उत्तरछायावादी काव्य ने न तो पूरी तरह से द्विवेदीयुगीन भाषा और शिल्प का सहारा लिया और न ही छायावाद का अनुकरण किया, उन्होंने एक ऐसा मध्यमार्ग निकाला, जो आम पाठक में भी लोकप्रिय हो सके।

5.5.1 काव्य भाषा

छायावाद की भाषा में जो सूक्ष्मता और वक्रता है वह उत्तरछायावादी कविता में नहीं है। इसका कारण यह है कि इस काव्य में भावनाओं की वैसी जटिलता और गहनता नहीं है, जैसी छायावाद में थी। भावों की सहजता ने भाषा को भी उसी रूप में ढाला। लेकिन छायावाद की तरह यह काव्य भी मूलतः स्वच्छंदतावादी काव्य है, इसलिए इसकी भाषा में बौद्धिकता का अभाव है तथा मुख्य बल भाषा की सुकुमारता, माधुर्य और लालित्य पर है। उत्तरछायावादी काव्य, सीधी-सरल पदावली द्वारा जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करने का प्रयास करता है।

इस काल के कवियों का भाषा के क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान था-काव्य भाषा को बोलचाल की भाषा के नजदीक लाना। यह काम न तो द्विवेदी युग में हुआ था और न ही छायावाद में। यद्यपि इन कवियों ने भी आमतौर पर तत्सम प्रधान शब्दावली का ही प्रयोग किया परन्तु समास बहुलता, संस्कृतनिष्ठता से उन्होंने छुटकारा पा लिया। साथ ही जहाँ आवश्यक हुआ, वहाँ तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया। 'बच्चन' की 'मधुशाला' का निम्नलिखित अंश इस दौर की भाषा की विशेषताओं को व्यक्त करता है-

> नाम अगर पूछे कोई तो
> कहना बस पीने वाला,
> काम, ढालना और ढलाना,
> सबको मदिरा का प्याला,
> जाति, प्रिये, पूछे यदि कोई,
> कह देना दीवानों की,
> धर्म बताना, प्यालों की ले
> माला जपना मधुशाला।

5.4.2 काव्य-शिल्प

उत्तरछायावादी कविता में शैली की दृष्टि से वैसी विविधता तो नहीं मिलती जैसी छायावाद में देखने को मिलती है, परन्तु यह भी सही है इस काव्यधारा ने भी मुख्यतः मुक्तक रचना की ओर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। मुक्तक रचना में भी इन कवियों की प्रवृत्ति गीत रचना की ओर अधिक थी। इसका एक कारण तो इनका रोमानी प्रवृत्ति का होना था, दूसरा कारण संभवतः यह था कि इनमें से अधिकांश कवि अपनी रचनाओं को सभाओं, गोष्ठियों और कवि सम्मेलनों में पेश करते थे। स्पष्ट ही जो रचनाएँ पढ़ने की बजाए सुनने के माध्यम से अपने को संप्रेषित करती हैं, उनमें गीतात्मकता अत्यंत सहायक होती है। बच्चन की 'मधुशाला' दौर की रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं, जो उस युग में अत्यंत लोकप्रिय हुईं।

गीतों में छंद, लय और संगीत तीनों तत्वों की प्रधानता होती है। इसके साथ ही गाने वाले के स्वर का भी उसमें योगदान होता है। दूसरी बात यह है कि गीत को सुनते हुए ही उसके भावों का मर्म श्रोताओं के हृदय तक पहुँच जाना चाहिए। इस दृष्टि से इस दौर के कवियों विशेषतः नवीन, बच्चन, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, अंचल आदि के गीत अत्यंत प्रभावशाली हैं।

इस काव्यधारा के गीतों में छायावाद जैसी रहस्यात्मकता और संकोच नहीं है बल्कि अपनी हृदयगत भावनाओं को कवियों ने बेबाक ढंग से प्रस्तुत किया है। यहाँ भी कवि का – 'मैं ' उपस्थित है जो अपने राग-विराग को निःसंकोच गीतों में ढाल लेता है। इन गीतों में यदि राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है तो उसमें उद्‌बोधन, समर्पण और चुनौती का भाव प्रमुख है और यदि प्रणय-भावना की अभिव्यक्ति हुई है तो उल्लास, पीड़ा, उदासी, अंसतोष, टूटन आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इस अभिव्यक्ति में किसी तरह का आवरण नहीं है, न ही उन्हें कोई दार्शनिक अर्थ दिया गया है। 'बच्चन' के 'निशा निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' आदि काव्य प्रेम के अवसाद के घनत्व को मुखर करते हैं तो 'मिलन यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह की व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौन्दर्य भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी हैं।

(डॉ. रामदरश मिश्र)

इस दौर के गीतिकाव्य की विशेषता का उल्लेख करते हुए डॉ. रामदरश मिश्र कहते हैं, "वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्तिमूलक सादगी उसकी एक बहुत बड़ी देन है। कवि सीधे-सादे शब्दों, परिचित चित्रों और सहज कथन-भंगिमा के द्वारा अपनी बात बड़ी सफाई से कह देता है।" बच्चन के एक गीत की बानगी देखिए :

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण।
रात का अंतिम प्रहर है,
झिलमिलाते, हैं सितारे,
वक्ष पर युग बाहु बाँधे
मैं खड़ा सागर किनारे
वेग से बहता प्रभंजन
केश-पट मेरे उड़ाता।
शून्य में भरता उदधि-
उर की रहस्यमयी, पुकारें;
इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में,
है प्रतिच्छादित जहाँ पर
सिंधु का हिल्लोल कंपन!
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

उत्तरछायावादी कविता में कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए। मुख्य रूप से ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर लिखे गए प्रबंध काव्य, जिनका उद्देश्य लोगों में राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करना था। इस प्रबंध काव्यों में सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य-विजय ', लोचनप्रसाद पांडेय की 'मेवाड़ गाथा', रामधारी सिंह दिनकर कृत 'कुरुक्षेत्र' आदि प्रमुख हैं।

प्रणय-भावना को व्यक्त करने वाले कवियों ने अपने गीतों में कुछ विशेष प्रतीकों का उपयोग किया है। साक़ी, शराब, प्याला, मदिरालय, मधु आदि ऐसे ही प्रतीक हैं। बच्चन ने अपनी आरंभिक रचनाओं में इनका उपयोग अधिक किया है। नवीन की कविताओं में भी इसका असर देखा जा सकता हे। यहाँ शराब या मधु जीवन का रस या आनंद है। प्याला व्यक्ति का जीवन है, साक़ी जीवन की प्रेरणा या सौन्दर्य-बोध है। मदिरालय यह संसार है। इन प्रतीकों के अतिरिक्त प्रकृति के प्रतीकों का भी कविताओं में उपयोग किया गया है। आमतौर पर इन काव्यधाराओं में प्रयुक्त प्रतीक सहज ही संप्रेषणीय हैं।

उत्तरछायावादी काव्य अपनी अंतर्वस्तु, भावबोध और विचार दृष्टि से लौकिक और मानवीय है। इसमें प्राचीन रूढ़ियों या वर्तमान बुराइयों का विरोध भी है परन्तु यह काव्य सामाजिक यथार्थ की जटिलता और व्यक्ति की गहन अनुभूतियों को व्यक्त करने की ओर प्रेरित नहीं हुआ। इसी प्रकार काव्य कला की दृष्टि से इस काव्यधारा ने बोलचाल की भाषा को काव्यात्मक उत्कर्षता प्रदान की और गीतिकाव्य परम्परा को समृद्ध किया परन्तु वह वैविध्य और वह कल्पनाशील सौन्दर्य इस काव्यधारा को नहीं मिल सका जो छायावाद को सहज ही प्राप्त था।

5.6 प्रमुख उत्तरछायावादी कवि

उत्तरछायावादी काव्य की उपर्युक्त तीनों प्रवृत्तियों ने हिन्दी काव्य परंपरा को कई महत्वपूर्ण कवि दिए। रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, हरिवंशराय बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयशंकर भट्ट , गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेह', गोपालसिंह नेपाली, हरिकृष्ण प्रेमी, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', हरिशंकर शर्मा, बेढब बनारसी आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ कवियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है।

माखनलाल चतुर्वेदी (1588-1968) को हिन्दी साहित्य जगत् में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से जाना जाता है। वे महान् राष्ट्रवादी और प्रतिभाशाली साहित्यकार भी थे। इन्होंने अपनी आरंभिक रचनाएँ 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रकाशित कराई थीं। ये एक पत्रकार के रूप में भी सक्रिय रहे और 'प्रभा' 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' का संपादन किया। माखनलाल चतुर्वेदी आरंभ में क्रांतिकारी आंदोलन से प्रभावित रहे, बाद में गाँधीवाद से प्रभावित हुए। चतुर्वेदी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और कई बार जेल गए।

चतुर्वेदी जी की रचनाओं में राष्ट्र के प्रति गहरा प्रेम और उसके लिए आत्मोत्सर्ग करने की भावना व्यक्त हुई है। राष्ट्र-प्रेम की कविताओं के अतिरिक्त आत्मानुभूति, आध्यात्मिक चेतना, प्रकृति-सौन्दर्य आदि भी उनके काव्य के विषय रहे हैं। उनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैंः हिमकिरीटिनी (1942), हिमतरंगिनी (1949), युगचरण, समर्पण, वेणु लो गूँजे धरा, बीजुरी काजल आँज रही आदि। माखनलाल चतुर्वेदी की प्रख्यात रचना 'कैदी और कोकिल' है जिसकी रचना 1930 में जेल में हुई थी। इसमें कवि, एक कैदी, कोकिला को संबोधित करके अपनी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करता है।

सियारामशरण गुप्त (1595-1963) गाँधीवाद में गहरी आस्था रखते थे। ये अत्यंत प्रतिभावान् साहित्यकार थे और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। इनकी रचनाओं पर अहिंसा-सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शांति आदि गांधीवादी मूल्यों का जबर्दस्त प्रभाव था। उनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं : दूर्वादल, विषाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी, बापू,

दैनिकी आदि। इन्होंने सरल भाषा में अत्यंत मार्मिक कविताएँ लिखी हैं। इन्होंने मुक्त छंद में भी कई सुंदर रचनाएँ की हैं।

बालकृष्ण शर्मा नवीन (1897-1960) ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और कई बार जेल गए। वे कानपुर में मजदूर आंदोलन से भी लंबे समय तक संबद्ध रहे। देश के आजाद होने पर नवीन जी संसद सदस्य भी रहे। इन्होंने 'प्रभा' और 'प्रताप' पत्रिकाओं का भी संपादन किया। इनकी रचनाएं 1918 में ही प्रकाशित होने लगी थीं परन्तु पहला काव्य-संग्रह 'कुंकुम' 1939 में प्रकाशित हुआ था।

इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं-अपलक, रश्मि रेखा, क्वासि, हम विषपायी जनम के। नवीन जी ने राष्ट्र प्रेम और प्रणय-भावना दोनों को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इनकी राष्ट्र प्रेम की कविताओं में अतीत का गौरव-गान, तत्कालीन भारतीय समाज की दीन-हीन दशा के प्रति आक्रोश और राष्ट्रीय मुक्ति की कामना व्यक्त हुई है। प्रेम और मस्ती के काव्य मे आवेश और आसक्ति का स्वर प्रधान है।

सुभद्राकुमारी चौहान (1905-1948) ने राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया और कई बार जेल गयीं। इनकी कविताएँ 'त्रिधारा' और 'मुकुल' में संकलित हैं। इन्होंने मुख्य रूप से राष्ट्र प्रेम की रचनाएँ की हैं जिनमें 'वीरों का कैसा हो बसंत' तथा 'झांसी की रानी' अत्यंत लोकप्रिय हैं। अन्य कविताओं में पति-प्रेम और वात्सल्य भाव को मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है। इनकी भाषा सरल और सहज है।

भगवतीचरण वर्मा (1903-1981) ने मस्ती और फक्कड़पन वाली कविताएँ भी लिखी हैं किंतु इनका मुख्य क्षेत्र समाज की विषमताओं से पराजित और संघर्ष से विरत एकाकी व्यक्ति की अनुभूतियों को व्यक्त करना रहा है। भगवतीचरण वर्मा का दर्शन नियतिवादी है। भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है।

हरिवंशराय बच्चन (1907-2003) ने काव्य में एक नयी प्रवृत्ति को लोकप्रिय बनाया जिसे 'हालावाद' की संज्ञा दी गयी। प्रेम और मस्ती का जैसा काव्य बच्चन ने लिखा, वैसा और कोई न लिख सका। 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' की उनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं। इन संग्रहों पर उमर खैयाम की रूबाइयों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। बच्चन के काव्य में यौवन की लालसा और उद्दाम भावावेग को अभिव्यक्ति मिली है तो जीवन के प्रति धर्मनिरपेक्ष और लौकिक दृष्टि ने भी उनके काव्य को उत्कृष्टता प्रदान की है। यद्यपि बच्चन अपनी कविताओं में सामाजिक यथार्थ के जटिल पक्ष को नहीं छूते परन्तु सामाजिक विषमता से उनका काव्य पूरी तरह से विमुख भी नहीं है। भाषा की दृष्टि से बच्चन का योगदान अविस्मरणीय है। तत्सम प्रधान होते हुए भी बोलचाल की हिन्दी को काव्यात्मक उत्कर्ष प्रदान करने का कार्य बच्चन ने किया है। सहजता, स्पष्टता और संवेदनशीलता उनकी काव्य-भाषा की खास पहचान है।

बोध प्रश्न

3) उत्तरछायावादी काव्य की भाषागत विशेषताएँ नीचे दी गई हैं। जो सही नहीं हैं, उन पर (X) का चिह्न लगाइए और जो सही हों उस सही का चिह्न (✓) लगाइए।

   क) सूक्ष्म और वक्र भाषा ( )

   ख) बोलचाल की भाषा ( )

   ग) तत्सम प्रधान शब्दावली ( )

   घ) तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग ( )

   ङ) समास-बहुल पद ( )

4) उत्तरछायावादी गीतिकाव्य की किन्हीं तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

5) छायावाद और उत्तरछायावादी काव्य-भाषा की तुलना कीजिए। उत्तर केवल पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

5.7 उत्तरछायावादी काव्य का महत्व

इस इकाई के आरंभ में उत्तरछायावादी काव्य के अंतर्गत जिन काव्य प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है उनका महत्व यह है कि वे एक ओर राष्ट्रीय आंदोलन के तीव्र होते हुए ज्वार को अभिव्यक्ति देती है, तो दूसरी ओर वह उस युग के वर्ग के उल्लास, उमंग, जीवनोन्मुखी दृष्टि का परिचय भी देती है। इस काव्य की सीमा यह है कि वह युग के जटिल यथार्थ में निहित अंतर्विरोधों की ओर दृष्टिपात नहीं करता, न ही उस युग की व्यापक जन आकांक्षा को वाणी देता है। रूप और शिल्प की दृष्टि से लोकप्रिय माध्यमों को अपनाने के बावजूद नए प्रयोगों की ओर रुझान कम है।

5.8 सारांश

- इस इकाई में हमने छायावाद के बाद की कुछ प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों का परिचय दिया है। छायावाद के उत्तरकाल में राष्ट्रीय भावना, प्रेम और मस्ती तथा हास्य-व्यंग्य की जिन प्रवृत्तियों का उदय हुआ था, उन्हें बाद में उत्तरछायावादी काव्य के नाम से जाना गया। राष्ट्रीय आंदोलन के तीव्र होते ज्वार से उत्पन्न इस काव्य में उस युग की परिस्थितियों और युवा वर्ग की आकांक्षाओं का प्रतिबिंब नजर आता है।

- उत्तरछायावादी काव्य की भाषा सहज, सरल और बोलचाल के नजदीक है तथा गीतात्मकता की ओर इसका अधिक झुकाव है। बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर आदि के राष्ट्रीय उद्बोधन तथा बच्चन, भगवतीचरण वर्मा आदि के प्रेम और मस्ती से ओतप्रोत गीतों ने अपार लोकप्रियता अर्जित की।

5.9 उपयोगी पुस्तकें

डॉ. रामविलास शर्माः *मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984

डॉ. रामविलास शर्माः *रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990

डॉ. परमानंद श्रीवास्तवः *शब्द और मनुष्य,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1988

डॉ. नामवर सिंहः *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

डॉ. प्रेमशंकरः *हिन्दी स्वच्छंदतावादी काव्य,* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

डॉ. नगेन्द्र (सं.): *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिकशिंग हाउस, नई दिल्ली।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारीः *आधुनिक हिन्दी कविता,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

5.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. देखिए 5.2.2
2. i) राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति के साथ स्वयं भी संघर्ष में भाग लिया।
   ii) सच्चाई और भावावेश
   iii) राष्ट्र के प्रति गहरी समर्पण भावना
   iv) जनता की वास्तविक दीन–हीन दशा का चित्रण
   v) अतीत के गौरव की प्रतिष्ठा
3. क) ✓ ख) × ग) × घ) × ङ) ✓
4. i) हृदयगत भावनाओं की बेबाक अभिव्यक्ति
   ii) राष्ट्रीय चेतना और प्रणय भावना की अभिव्यक्ति
   iii) अभिव्यक्तिमूलक सादगी और सहज कथन भंगिमा
5. देखिए 5.5.1

इकाई 6 प्रगतिशील काव्य

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 प्रगतिशील काव्यधारा की पृष्ठभूमि

6.3 प्रगतिवाद : अखिल भारतीय साहित्यधारा

6.4 प्रगतिशील चेतना की विकास-प्रक्रिया

6.5 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

6.6 प्रगतिशील काव्यधारा की विशेषताएँ

6.6.1 गाँव, प्रकृति और श्रम के चित्र

6.6.2 श्रम-शक्ति पर आस्था

6.6.3 प्रेम का स्वरूप

6.7 स्वातंत्र्योत्तर-काल में प्रगतिशील चेतना

6.8 प्रगतिवाद की देन

6.9 काव्य शिल्प

6.10 सारांश

6.11 उपयोगी पुस्तकें

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- प्रगतिशील चेतना के उद्भव की प्रक्रिया और उसकी पृष्ठभूमि की चर्चा कर सकेंगे;
- छायावाद और उत्तरछायावादी काव्य सृजन की प्रवृत्तियों से किस तरह प्रगतिशील काव्य धारा अलग हुई - इसकी चर्चा कर सकेंगे;
- प्रगतिशील चेतना के आगमन की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों की जानकारी दे सकेंगे;
- प्रगतिवादी काव्य सृजन के प्रमुख कवियों की चर्चा कर सकेंगे; और
- प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

छायावाद और उत्तरछायावादी काव्य के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के बाद अब हम प्रगतिवादी कविता के बारे में अध्ययन करेंगे। इसके लिए सबसे पहले हमें यह जानना होगा कि वे कौन सी परिस्थितियाँ थीं, जिससे प्रेरित होकर प्रगतिशील चेतना उद्‌भूत हुई और प्रगतिवादी काव्य का दौर शुरू हुआ।

सन् 1930 आते-आते स्थापित काव्यधारा छायावाद और रहस्यवाद का आकर्षण फीका पड़ने लगा था। कथा सम्राट प्रेमचन्द के उपन्यास 'गबन' और जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'तितली' में श्रम और श्रमिकों के प्रति आस्था दिखाई देने लगी। हिंदी कविता में इसी दौरान 'कल्पना' से मोह तोड़कर ठोस वास्तविकता और समाजिकता का आग्रह दिखने लगा। इन्हीं दिनों 'यथार्थवाद' पर जयशंकर प्रसाद का लेख छपा, जिसमें यथार्थ और वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक परिभाषित किया गया। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चतुरी चमार' लिखा ; महादेवी वर्मा ने कई रेखाचित्र लिखे ; सुमित्रानन्दन पन्त ने 'रूपाभ' का संपादन किया। ... इन सभी रचनाओं में रचनाकारों ने 'कल्पना' से अलग रहकर यथार्थ का चित्र खींचा। ये सारी स्थितियाँ भारतीय बुद्धिजीवियों की प्रगतिशील चेतना का संकेत देती हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना में 'लोक-मंगल' का सिद्धान्त स्थापित कर रहे थे। इधर कांग्रेस के प्रस्तावों में श्रमजीवियों की चर्चा हो रही थी, किसान-मजदूर आन्दोलन ताकतवर होने लगा। देश के बुद्धिजीवियों में नव सामाजिक चेतना का उदय हुआ। उधर सन् 1935 में ई.एम. फार्स्टर की अध्यक्षता में प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन नामक अंतरराष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन हुआ। इससे अंग्रेजी साहित्य में 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' पदबन्ध का प्रचार शुरू हुआ। 'प्रगतिशील साहित्य' इसी का अनुवाद है। उसके अगले वर्ष मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के प्रयास से भारत में इसका पहला अधिवेशन लखनऊ में मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुआ। इसके पश्चात् यहाँ भी प्रगतिशील साहित्य का प्रचार-प्रसार हुआ। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए प्रेमचन्द ने कहा कि लेखक चूँकि स्वभाव से प्रगतिशील होता है, इसलिए प्रगतिशील लेखक संघ में प्रगतिशील शब्द अनावश्यक है।

छायावाद में कल्पना, वैयक्तिकता और भावुकता का घटाटोप इतना बढ़ गया था, शब्दों-वाक्यों की फिजूलखर्ची होने लगी थी, कई बार वस्तुस्थिति निखरने के बजाए दबने लगती थी, सामाजिक और मानवीय यथार्थ की तीक्ष्णता उस काव्य-धारा में उजागर नहीं हो पा रही थी। कवि, विचारक नए माध्यम और कथन-शैली की खोज में थे। उपन्यास सामाजिक यथार्थ की बुनियाद पर खड़ी नई विधा का साहित्य है। कई उपन्यास लिखे जा चुके थे और उसका असर व्यक्ति और समाज पर दिख रहा था। 'छंद' के अनुशासन को बंधन के रूप में देखा जाने लगा। कल्पना का बाहुल्य, शब्दों के अपव्यय, सीमित भावों की व्याख्या के कारण कई तरह की हदबन्दी यहाँ दिखाई देती थी। इन सारी परिस्थितियों को देखते हुए सीमा तोड़ना बहुत आवश्यक प्रतीत हो गया था। छायावाद का प्रवेश भी पुरानी रीति-शैली तोड़कर ही संभव हुआ था। छायावाद की रचना शैली भी टूटी, महाकवि निराला इसके प्रवर्तक हुए। छंदों की दुनिया में काव्य सृजन की तंग-राह से उन्होंने फुरसत पा ली, और मुक्त छन्द की ओर चल पड़े। 'जा तू प्रिये छोड़कर बंधनमय छन्दों की छोटी राह।' 'जूही की कली' शीर्षक कविता मुक्त छन्द में ही सन् 1916 में लिखी गई थी।

भारत में 'प्रगति' अथवा 'प्रगतिवाद' का विकास इन्हीं परिस्थितियों से संभव हुआ। स्वयं छायावाद के कवियों को अपने अन्तस् की प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी थी। अपने कविता-संग्रह 'युगान्त' और 'युगवाणी' के माध्यम से सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावाद का 'युगान्त' घोषित कर प्रगतिवाद को 'युगवाणी' के रूप में तुरंत अपना लिया। देर-सवेर महादेवी ने भी अपनी सीमाओं में इसे स्वीकार किया। निराला तो बहुत पहले से ही कविता को 'बहुजीवन की छवि' मानकर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते आ रहे थे और हिंदी कविता में निरन्तर नए सोच तथा सामाजिक सरोकार की गहनता का परिचय देते आ रहे थे। गौरतलब है कि जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला छायावाद के दौर के अग्रदूत के रूप में ख्यात थे। जो भी हो, हिंदी में प्रगतिवाद का विधिवत् प्रारंभ 1936 से माना जाता है।

6.2 प्रगतिशील काव्यधारा की पृष्ठभूमि

साहित्य के क्षेत्र में हर नया आन्दोलन, जीवन के प्रति बदलते दृष्टिकोण से ही शुरू होता है। कार्ल मार्क्स ने घोषणा की कि यह विश्व ईश्वर की निर्मिति नहीं है, मनुष्य सर्वोपरि है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रतिष्ठा इन्हीं विचारों के परिणाम स्वरूप हुई। युग का नेतृत्व धर्म नहीं वरन् विज्ञान करने लगा। नूतन समाज की परिकल्पना स्पष्ट होने लगी। वर्ग और धर्म से परे मानवीय समता की बात मुखर होने लगी। साहित्य के क्षेत्र में जीवन के प्रति इन्हीं दृष्टिकोणों के कारण, इन्हीं सपनों के कारण लोकोन्मुखी चेतना का प्रभाव बढ़ा। रूस की वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति लोगों का अनुराग बढ़ा।

'प्रगति' के निमित्त उद्यम उस समय की बड़ी बात थी। सारे लोकचेता बुद्धिजीवी तन्मय और तटस्थ भाव से इस नई चिंतन पद्धति को स्वर देने में लग गए। प्रेमचन्द ने प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष पद से वक्तव्य दिया -'हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो? जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'

उस समय देश के बुद्धिजीवियों में बदलाव के प्रति उत्साह का भाव था। सन् 1937 में 'विशाल भारत' में शिवदान सिंह चौहान ने अपने लेख 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' में लिखा - हमारा साहित्यिक नारा कला कला के लिए नहीं, वरन् कला संसार को बदलने के लिए है। - इस नारे को बुलंद करना प्रत्येक साहित्यिक का फर्ज है।

यह वह दौर है जब भारत में स्वाधीनता आन्दोलन नए दौर में प्रवेश करता है। गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पश्चात् जनता में साम्राज्यवाद, समाजवाद, प्रजातंत्र आदि की अवधारणाओं पर बहस प्रारंभ हो चुकी थी। कांग्रेस में समाजवाद से प्रभावित नेताओं की संख्या बढ़ने लगी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारतीय जन मानस वैश्विक साम्राज्यवाद के परिणामों से अवगत होने लगा था। ऐसे संकट के समय कई बुद्धिजीवियों को समाजवाद में मानवता का भविष्य दिखने लगा था।

उस दौर के रचनाकारों ने जन-मन की इच्छा-आकांक्षा और स्थिति-परिस्थिति को सूक्ष्मता से पहचाना। पहली बार कविता में किसान, मजदूर, श्रमजीवी उपस्थित हुए; उनके घर, परिवार और देह-दशा की स्थिति वहाँ दर्ज हुई। यहाँ इस बात का उल्लेख उचित होगा

कि साहित्य में कोई भी नवीन धारा एकदम से नहीं आ जाती है और न एकदम से चली जाती है। हर धारा को जीर्ण-पुरातन होने में थोड़ा समय लगता है; और नई धारा के आ जाने के बाद भी पूर्व धारा का कुछ-कुछ सूत्र बचा रह जाता है जो धीरे-धीरे समाप्त होता है। प्रगतिवाद भी इसका अपवाद नहीं है। प्रारंभिक दौर में नए-पुराने रचनाकारों की लंबी सूची तैयार हुई जो प्रगतिवादी -चेतना से प्रभावित थे। इनमें से कई रचनाकारों में पूर्ववर्ती काव्य-परंपरा की सामाजिक चेतना और भाववादी संस्कार बने हुए थे। इससे प्रतीत होता है कि भारतीय कविता में प्रगतिवाद कहीं बाहर से नहीं लाया गया था, बल्कि इसका उद्भव और विकास अपनी साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों में हुआ।

6.3 प्रगतिवाद : अखिल भारतीय साहित्यधारा

भक्ति आंदोलन के बाद, प्रगतिवाद ही वह आन्दोलनकारी साहित्यिक धारा साबित हुई, जो अखिल भारतीय स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ सकी। हिंदी के अलावा उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी, तेलुगु, मलयालम एवं अन्य भाषाओं के साहित्य में भी यह आन्दोलन फैला। इस विराट सामाजिक भावना से हिंदी साहित्य को बड़ा लाभ मिला। जन-मन के सामाजिक यथार्थ को पहचान और कविता में उसका चित्रण निर्भीकता और उदारता से होने लगा। मजदूर किसान और निम्न मध्य वर्ग के शिक्षित, साक्षर युवकों में प्रगतिचेतना का उदय हुआ। उस दौर से सुविख्यात बुद्धिजीवियों और रचनाकारों में से लगभग सभी ने इस साहित्यधारा का स्वागत और समर्थन सभी साहित्यिक विधाओं में किया। 'हंस', 'रूपाभ', 'नया साहित्य', 'काव्यधारा', 'संकेत' सभी पत्र-पत्रिकाओं में साम्यवादी विचार, सामाजिक यथार्थ और प्रगतिवादी काव्य पर विपुल मात्रा में आलेख प्रकाशित हुए। उस दौर के सृजन का मूल स्वर साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, फासीवाद, शोषण, अन्याय आदि का विरोध था। सुमित्रानन्दन पन्त की 'ग्राम्या', सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'नए पत्ते' और 'कुकुरमुत्ता', रामेश्वर शुक्ल अंचल की 'करील', नरेन्द्र शर्मा की 'रक्त चन्दन', गिरिजा कुमार माथुर की 'धूप के धान', नागार्जुन की 'युगधारा', रांगेय राघव की 'पिघलते पत्थर', 'अजेय खण्डहर', शिवमंगल सिंह सुमन की 'प्रलय-सृजन', केदारनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा', त्रिलोचन शास्त्री की 'धरती' आदि पुस्तकें प्रगतिवादी काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

कुछ आलोचकों ने बाद के दिनों में प्रगतिवाद की आलोचना भी की। कुछ विद्वानों ने प्रगतिवाद का काल सन् 1936 से 1954 तक निश्चित कर दिया। कुछ ने इसे अभारतीय और विदेशी विचारधारा से प्रेरित माना। कुछ की राय है कि छायावाद के दौर में वैयक्तिक अनुभूति की जो प्रतिष्ठा थी, प्रगतिवाद में वही प्रतिष्ठा सामाजिक यथार्थ को दी गई। कुछ लोगों ने कहा कि दूसरे महायुद्ध के पांच-छह वर्षों तक प्रगतिवादी काव्य की धूम रही। किन्तु जल्दी ही यह काव्यधारा राजनीतिक दलबन्दी और कठोर मतवाद के भँवर में फँसकर अपनी दीप्ति खोने लगी। कुछ ने इसे रवीन्द्र और प्रेमचन्द की राह मान ली। कुछ ने कहा कि प्रयोगवाद, अकविता, नई कविता आदि काव्यधारा की शुरूआत प्रगतिवाद की सीमाओं और सीमित मान्यताओं के कारण ही हुई।

सन् 1937 में सुमित्रानन्दन पंत ने लिखा - 'गा कोकिल बरसा पावक कण, नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन', फिर लिखा - 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र।' अर्थात् कोकिल के गान में कवि आग की वर्षा चाहने लगे। वैसी आग, जो सारे जीर्ण और पुरातन को नष्ट कर दे, जीर्ण और पुराने पत्ते जल्दी झड़ जाएँ, जल जाएँ, नष्ट हो जाएँ, नए का उदय हो, सब कुछ नया हो, और लोगों के मन में आग की उज्ज्वलता बची रहे। बाल कृष्ण शर्मा

'नवीन' और रामधारी सिंह 'दिनकर' तो पहले से ही समूहवादी भावनाओं के हिमायती के रूप में जाने जा चुके थे।

प्रगतिवाद की चर्चा करते हुए कुछ पारिभाषिक शब्द प्रमुखता से प्रयोग में आते है। ये केवल शब्द नहीं हैं, मानवीय समझ और विचार से इनके गहरे संबंध हैं, प्रगतिवाद की मौलिक संरचना में इन विचारों की अहम भूमिका है। मार्क्सवाद, साम्यवाद, यथार्थवाद, समाजिक यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, समाजवाद आदि के आपसी संबंध की समझ के आलोक में ही प्रगतिवाद की पड़ताल संभव है। चिंतन के इतिहास में कार्ल मार्क्स (सन् 1818-1883) के विचारों से मार्क्सवाद का उदय हुआ। उन्होंने फायरबाख के भौतिकवाद और हीगेल के द्वन्द्व सिद्धांत को मिलाकर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की स्थापना की। सृष्टि और समाज का समन्वित दर्शन ही मार्क्सवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण है। फायरबाख पर अपना मत देते हुए मार्क्स की धारणा बनी। दुनिया की केवल दार्शनिक व्याख्या पर्याप्त नहीं, उसका परिवर्तन आवश्यक है। समाज के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की बुनियादी बातों को जानना जरूरी है। समाज पल-पल परिवर्तनशील है। परिवर्तन का मूल क्रियाशीलता और गत्यात्मकता है। यह गत्यात्मकता स्वप्नों और भावनाओं की कोमल सेज पर नहीं, सत्य और परिस्थिति के कठोर धरातल पर संभव होती है। सृष्टि और समाज की इस व्यवस्था को समझने का दृष्टिकोण, तर्क और वैज्ञानिक दृष्टि के आधार पर अर्जित होता है। एंगिल्स ने इसे ही वैज्ञानिक समाजवाद कहा।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार मनुष्य के सारे कर्त्तव्यों की प्रेरणा उत्पादन है। मनुष्य के सामाजिक संबंधों की स्थापना का लक्ष्य यही उत्पादन है। समाज की इस उत्पादन प्रणाली में भी दो विरोधी शक्तियों का संघर्ष है। इसे वर्ग संघर्ष कहते हैं। एक वर्ग शोषक है, जो समाज का आर्थिक और राजनीतिक शासक होता है; दूसरा श्रमजीवी है, जो श्रम के उचित मूल्य से वंचित रहता है। श्रमफल के उचित वितरण का वैज्ञानिक दृष्टिकोण मार्क्सवादी चिंतन में व्याप्त है; समाजवाद, साम्यवाद इसी की परिणति हो सकती है। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण मनुष्य को प्रगति की ओर उन्मुख करता है। प्रगतिवाद का आधार यही है। 'प्रगतिवाद' का और प्रगतिवादी साहित्य का आधार मानव जीवन के यथार्थ चित्रण से तय हुआ। समकालीन समाज का सच जिस साहित्य में न दिखे, वह साहित्य न तो 'समाज का दर्पण' होगा, न 'जीवन की व्याख्या' होगी, न ही वह साहित्य 'आम जनता' अथवा 'श्रमिकों' के लिए होगा और न ही उससे कवि को 'स्वान्तः सुखाय' होगा। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के बाद हिंदी कविता में स्थापित काव्य-मूल्य और सृजन-दृष्टि आम लोगों में, और बुद्धिजीवियों में भी ऊब पैदा करने लगी थी। दुनिया के अन्य मुल्कों में तो कुछ पहले से ही यह स्थिति उत्पन्न हो गई थी, भारत में थोड़ी देर से आई। असल में 'प्रगतिवाद' एक मानवीय स्वभाव है, प्रगति की आकांक्षा से हर मनुष्य, हर पदार्थ सर्वकालिक रूप से भरा रहता है। स्वीकृत परंपराओं और मान्यताओं से घिरा रहकर जब कभी वह ऊबता है, तो आत्म-परीक्षण करता है, और उस परंपरा की सीमाओं को खोज निकालता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यहीं काम आता है। उसके अन्दर की विरोधी शक्ति यहीं पर उसे स्थापित मान्यता के बंधनों को काटने हेतु प्रेरित करता है। यही प्रेरणा सन् सत्तावन में जगी होगी, इसी प्रेरणा से 'छायावाद' का उदय हुआ, इसी प्रेरणा से सन् 1907 में इटली में 'मारनेति' की भविष्यवादी विचारधारा कायम हुई, सन् 1917 में बोलशेविक क्रांति द्वारा रूस में जार सत्ता समाप्त हुई और रूसी साहित्य में यथार्थवाद का जन्म हुआ। सन् 1935 में पेरिस में, 1936 में भारत में प्रगतिशील साहित्य की जड़ें पुख्ता हुईं। मानवतावाद और यथार्थवाद की बुनियाद पर साहित्य सृजन प्रारंभ हुआ।

6.4 प्रगतिशील चेतना की विकास-प्रक्रिया

प्रगतिवाद का प्रारंभ रूसी क्रांति के प्रभाव से हुआ। सन् 1917 की बोलशेविक क्रांति से रूस में जार शासन समाप्त हुआ और आर्थिक विषमता समाप्त कर वर्गहीन समाज की स्थापना करना साहित्यकारों का लक्ष्य बना। बुद्धिजीवियों की यही चेतना धीरे-धीरे सामूहिक चेतना में तब्दील हुई, कालान्तर में सामाजिक यथार्थवाद का स्वरूप तय हुआ। श्रमिकों में क्रांति का भाव जगाना उस समय की जरूरत थी। लंदन में सन् 1935 में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। उस के परिपत्र में कहा गया कि - भारतीय समाज में नित नए परिवर्तन होते जा रहे हैं। प्राचीन रूढ़िवादी विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं और इस प्रकार एक नए समाज का जन्म होने जा रहा है, अतः यह नितान्त आवश्यक है कि भारतीय साहित्यकार वहाँ के जनजीवन में होने वाले इस क्रांतिकारी परिवर्तन को शब्द और रूप दें और इस प्रकार राष्ट्र की प्रगति में सहायक हों। हमें भारतीय सभ्यता की परम्परा की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों की कड़ी आलोचना करनी है तथा अपनी आलोचनात्मक एवं रचनात्मक कृतियों के द्वारा वे साधन जुटाने हैं जो हमें अपने लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं।

भारतीय लेखकों के इसी संकल्प को भारत में प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में ध्वनि दी - 'उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हममें दृढ़ता और कार्य शक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमें अपनी दुरवस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुंच गए और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।'

इन्हीं दिनों नागपुर में भारतीय साहित्य परिषद् के सम्मेलन में भारतीय लेखकों ने घोषणा की कि - जीवित और शाश्वत साहित्य वही है जो जीवन को बदलना चाहता है और उसे उन्नति का मार्ग दिखाता है और समूची मानवता की सेवा उसका मन्तव्य है।

भारतीय साहित्य में प्रगतिवाद का मूल स्वर इसी जमीन से उठा है। विदित है कि छायावाद के सबल स्तंभ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' वर्षों पहले छन्द के बंधन और भावुक कल्पना आदि से बाहर आकर छन्दमुक्त कविताएँ लिखने लगे थे। उसी छायावाद के दूसरे स्तंभ सुमित्रानंदन पंत ने सन् 1936 में 'युगान्त' और 'युगवाणी' के माध्यम से प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि स्वीकार कर ली थी। छायावादी कविता के माध्यम से अपनी पहचान स्थिर करने वाले कवियों का ही छायावाद से मोहभंग हो चुका था। भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के दूसरे अधिवेशन का सभापतित्व कलकत्ता में सन् 1938 में कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर को करना था। अस्वस्थता के कारण वे सभा में आ न सके। किंतु उनका संदेश पढ़कर लोगों को सुनाया गया। उस संदेश ने लोगों में नई प्रेरणाएँ भरीं। उनका संदेश था - ' साहित्य में प्रगतिवाद का जन्म ही जनसमूह की राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप हुआ। चिर सुसुप्त मानवता जाग उठी और उसने मुट्ठी भर धन कुबेरों के इशारे पर नाचने से इनकार कर दिया। जन-समूह ने अपने जीवन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले ली और जनता के हृदय में उठती इन लहरों का प्रतिबिंब पड़ा और फलस्वरूप प्रगतिवाद का जन्म हुआ। अतः रूढ़ अर्थ में प्रगतिवाद मार्क्स के वर्ग-युद्ध पर आधारित है। इसी हेतु संसार की मानवता को कुचलने एवं उसे अब तक पददलित रखने वाले धनिक वर्ग के प्रति तीव्रता एवं कटुता इसमें स्वाभाविक है।' .. इस नवीन पुनर्जागरण ने देश के साहित्य को अपनी दिशा परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रगतिवाद के प्रारंभिक काल से ही कविता का क्षेत्र विस्तार हुआ और कवियों की दृष्टि ग्राम्य जीवन की ओर मुड़ी। मगर वहाँ जाकर कवि की नजर किसी रहस्य और विस्मय लोक में लिपट नहीं गई अपितु वहाँ के यथार्थ को कवियों ने मार्मिकता से पकड़ा। सामन्ती प्रथा, शोषण, श्रमिकों और आम नागरिकों की बदहाली, किसानों की दुःस्थिति, कर्ज, भूख, अशिक्षा, अराजकता, पराधीनता आदि सब के विरोध में कवियों ने आवाज बुलंद की। कविताओं में क्रांति और विरोध का स्वर मुखर करने के लिए स्थिति-चित्र सामने आए। व्यंग्य, विवरण, धिक्कार, फटकार, घोषणा, धमकी इन सभी तर्ज पर कविता सामने आई। पूँजीवाद के विरुद्ध मुक्तिबोध ने आवाज उठाई और उसका भविष्य निर्धारित कर दिया–

तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ...।

पराधीनता से टक्कर लेने नरेन्द्र शर्मा सामने आए और अपने सहजीवी नागरिक से प्रश्न किया –

एक ओर जंजीर, दूसरी ओर पड़ी है तेग दुधारी
जो चाहे ले आगे आ तू
जो चाहे ले, हाथ बढ़ा तू
देखूं किसे गुलामी भाती और किसे आजादी प्यारी ...

यहाँ 'जंजीर' गुलामी है और 'तेग दुधारी' संघर्ष की ज्वाला। कवि का प्रश्न जनता के सामने धिक्कार के रूप में उभरता है।

अपनी योजना के रूप में रामविलास शर्मा घोषित करते हैं और सामंत विरोध का सूत्र पकड़ाते हैं –

कुसंस्कृत भूमि पे किसान की
धरती के पुत्र की
जोतनी है गहरी दो-चार बार दस बार
बोना महातिक्त वहाँ बीज असंतोष का
काटनी है नए साल फागुन में फसल जो क्रांति की ...

धरती पुत्र किसान के मन में कवि असंतोष का तिक्त बीज रोप रहे हैं, ताकि वे क्रांति के लिए खड़े हो जाएँ। यह आह्वान प्रगतिवादी दौर की अपनी विशेषता है।

बोध प्रश्न 1

1. प्रगतिवादी काव्यधारा की परिस्थितियाँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

2. उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

   क) चिंतन के इतिहास में .... के विचारों से मार्क्सवाद का उदय हुआ।

   ख) प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन सन् .... में हुआ।

   ग) हिन्दी में प्रगतिवाद का विधिवत आरंभ सन् .... से माना जाता है।

   घ) 'काटनी है नए साल फागुन में फसल जो क्रांति की' पंक्तियाँ .... की हैं।

   ङ) 'युगान्त' और 'युगवाणी' .... की रचना है।

6.5 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिंदी कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। स्वयं इस धारा ने कई महत्वपूर्ण कवि हिंदी कविता को दिए। निराला, पंत, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर आदि पूर्ववर्ती काव्यधाराओं के कवि तो प्रगतिवाद से प्रभावित हुए ही, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, शील, गजानन माधव मुक्तिबोध, शंकर शैलेन्द्र, त्रिलोचन शास्त्री, शिवमंगलसिंह सुमन आदि कवि गीतकार इसी काव्यधारा की देन थे। प्रगतिवाद के उत्तरवर्ती दौर में प्रगतिशीलता का प्रभाव हम रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि कवियों पर भी देख सकते हैं। हम यहाँ कुछ प्रमुख प्रगतिशील कवियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

नागार्जुन : प्रगतिवादी काव्यधारा के महत्वपूर्ण कवियों में प्रमुख नागार्जुन के बारे में आज यह बात सहज ही कही जा सकती है कि समकालीन हिंदी काव्य परिदृश्य में भी उन्हें केन्द्रीयता प्राप्त है। मैथिली काव्य रचनाओं के लिए साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित नागार्जुन खड़ी बोली हिंदी कविताओं में भी गहरी आंचलिकता, ठेठपन, तद्भवता, व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता और गहरी जीवनासक्ति का प्रमाण देते हैं। राजनीतिक कविताएँ नागार्जुन के यहाँ बड़ी संख्या में हैं। कविता के लिए जो विषय अकल्पनीय या असंभव माने जाते हैं उन पर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखीं हैं और असाधारण सफलता प्राप्त की है। जीवन के प्रति प्रगाढ़ राग की कविताएँ भी उनके यहाँ कम नहीं हैं। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं : युगधारा, शपथ, प्रेत का बयान, खून और शोले, चना जोर गरम, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ। नागार्जुन ने हिंदी काव्य के साथ-साथ मैथिली में भी कविताएँ लिखी हैं, जो 'पत्रहीन नग्नगाछ' में संग्रहीत हैं। नागार्जुन हिंदी के प्रख्यात उपन्यासकार भी हैं। उनके प्रमुख उपन्यास हैं, पारो, बलचनमा, रतिनाथ की चाची, नई पौध, वरुण के बेटे, बाबा बटेसर नाथ, दुखमोचन आदि। नागार्जुन को आधुनिक कबीर कहा गया है। उनके फक्कड़ क्रांतिकारी व्यक्तित्व को देखते हुए उनकी कला में भी यही व्यक्तित्व समाया है।

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि तथा महत्वपूर्ण कवि हैं। रूमानी आदर्शवाद से यथार्थवाद तक, रूपासक्ति से जीवनासक्ति तक और कोमल रागात्मकता

से खुरदरे वस्तुचित्रण तक केदार की कविता के अनेक रंग हैं। भावुकता केदार के यहाँ आत्मीयता का पर्याप है। पत्नी प्रेम पर जैसी अकुंठ कविताएँ केदारनाथ अग्रवाल ने लिखी हैं, किसी ने नहीं लिखीं। प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति के गहरे लगाव के साथ केदार संघर्षशील जनता के कठोर जीवन, कठिन श्रम और दृढ़ वैचारिक आस्था की ओर बराबर सजग रहे हैं। 'चंद्रगहना से लौटती बेर', 'बसंती हवा' से केदार की खास पहचान बनी। केदारनाथ अग्रवाल स्वीकार करते हैं कि मार्क्सवादी विचारधारा के कारण ही उन्हें नयी जीवन दृष्टि और नयी काव्यदृष्टि मिली। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं : फल नहीं रंग बोलते हैं, गुलमेंहदी, अपूर्वा।

शमशेरबहादुर सिंह को प्रगतिवादी काव्यधारा से संबद्ध करने में उन्हें कठिनाई होती है जो प्रगतिवाद को स्थिर मतवाद ही मानते हैं, तथा जो उनकी काव्यात्मक संभावनाओं को महत्व नहीं देते हैं। शमशेर को प्रयोगवादी या रूपवादी मानकर अलग कर दिया जाता है। शमशेर विचारधारा की दृष्टि से मार्क्सवादी हैं और मार्क्सवाद को विशेष महत्व देते हैं। जनता के प्रति उनकी सहानुभूति किसी से कम नहीं है। पर कविताओं को वे उसकी मुक्त संभावनाओं में देखते हैं। रूप और शिल्प उन्हें जीवन की प्रकट सच्चाइयों की तरह ही जरूरी जान पड़ते हैं। उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं : कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ, इतने पास अपने, चुका भी हूँ नहीं मैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता का प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा से वैसा ही संबंध है जैसा नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल का है। यह अवश्य है कि शमशेर की तरह मुक्तिबोध भी कविता को यथार्थ के सीमित घेरे में बाँध कर नहीं देखते। मुक्तिबोध ने सीधे-सीधे स्वीकार किया है कि एक कला सिद्धांत के पीछे विशेष जीवनदृष्टि होती है, उसके पीछे एक जीवन दर्शन भी होता है और उसके पीछे एक राजनीतिक दृष्टि भी होती है। मुक्तिबोध की महत्वपूर्ण लंबी कविताएँ राजनीतिक दृष्टि से वंचित नहीं है। यह राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवाद ही है जो व्यापक अर्थ में विश्व दृष्टि भी है। मुक्तिबोध ने यथार्थ चित्रण के लिए फैंटेसी का भी उपयोग किया और इस प्रकार एकरस जान पड़ने वाले काव्यरूप में विविधता, नाटकीयता और गति पैदा की। अंधेरी दुनिया के रहस्यों को भेदते हुए मुक्तिबोध के जो विचार स्फुलिंग सामने आते हैं वे एक निश्चित विचारधारा या जीवनदृष्टि का प्रमाण देते हैं। वे सत्ता को किस तरह बेनकाब करते हैं इसका सटीक उदाहरण है 'भूल-गलती' नामक कविता -जिसमें 'भूल-गलती' सिंहासन पर बैठी है और 'सच' नाम का पात्र गिरफ्तार करके लाया जाता है। 'अंधेरे में' मुक्तिबोध की सबसे महत्वपूर्ण कविता है -आधुनिक कविता की विशिष्ट उपलब्धियों में से एक। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं : चाँद का मुँह टेढ़ा है तथा भूरि–भूरि खाक धूल। उनकी समस्त कविताएँ मुक्तिबोध रचनावली के भाग एक एवं दो में संग्रहीत हैं।

त्रिलोचन शास्त्री की एक अलग पहचान है। परंपरा में ही उन्हें रखना हो तो वे तुलसी और निराला की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवि हैं। उन्होंने राजनीतिक विषयों पर कविताएँ प्रायः नहीं लिखीं हैं। साधारण विषयों पर, जीवन के बहुत मामूली प्रसंगों पर लिखते हुए भी वे अपनी प्रगतिशील दृष्टि का प्रमाण देते हैं। सॉनेट त्रिलोचन का प्रिय छंद है। सॉनेटों में जितनी सहजता से वे आत्मकथ्य या सामाजिक संदेश बिखेरते चलते हैं, उसी से उनकी साफ दृष्टि और असाधारण काव्य क्षमता का पता चलता है। त्रिलोचन की कविताएँ सीधे जीवन को पकड़ती हैं। त्रिलोचन का प्रथम महत्वपूर्ण संग्रह 'धरता' है। दूसरा संग्रह है 'दिगंत'। अन्य संग्रह हैं : ताप के तापे हुए दिन, उस जनपद का कवि हूँ।

6.6 प्रगतिशील काव्यधारा की विशेषताएँ

आम जनमानस की समस्याओं, दुविधाओं को समझना, जमाखोरी का विरोध करना; स्थापित समाज व्यवस्था की रूढ़ियों और जड़ मनस्थितियों का खंडन करना, जन और समाज के जीवन यथार्थ को पूरी वास्तविकता में देखना, राष्ट्र एवं विश्व के प्रति सजग दृष्टि रखना, जीवन की सहजता बाधित करने वाली जर्जर मान्यताओं, पद्धतियों को निरस्त कर नई व्यवस्था का अह्वान करना, प्रगति और परिवर्तन के प्रति सचेत और सावधान रहना, मानवीय और नैतिक पद्धति के जीवन-यापन हेतु नागरिक को प्रेरित करना, अपने अधिकार की रक्षा हेतु निरंतर संघर्षोन्मुख रहना आदि प्रगतिशील कविता-धारा की कुछ मूल विशेषताएँ हैं। उस दौर की सारी रचनाओं में ये विशेषताएँ आसानी से दिखते हैं। वस्तुतः ये ऐसे स्वभाव हैं जो आज की कविताओं के लिए भी आवश्यक हैं; आज यदि समकालीन कविता की पड़ताल शुरू करें तो अपने विस्तार-संकोच-परिवर्तन के साथ लगभग ये सारे तत्व आज की कविताओं में भी दिखते हैं। इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि आज की हिंदी कविता में भी युग सम्मत प्रगति चेतना भरी हुई है। चेतना पल-पल नूतन होती जाती है; समाज के लिए मानवीय और मानव के लिए सामाजिक होती जाती है; सुंदर और कलात्मक होती जाती है। इस प्रसंग में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं, 'समाज के भीतर जो जीर्ण और मरणशील है, उनके लिए सुंदरता मृत्यु में है, अन्याय और अत्याचार के फरेब को ढूंढने में है, भविष्य के त्रस्त होने और क्षण में ही जीवन की साधें पूरी करने में है। जो जीवित और उदीयमान हैं, उनके लिए सुंदरता सत्य में है, मृत्यु को जीतने में है, अज्ञान, अत्याचार और अन्याय की दुनिया को दफनाने में है, सुख, और शान्ति के उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ने में है। साहित्य उस मंजिल तक पहुंचने का शक्तिशाली साधन है।' प्रगतिशील कविता में हमें ये सारी ही स्थितियाँ दिखाई देती हैं।

6.6.1 गांव, प्रकृति और श्रम के चित्र

गाँव के लोगों के मैले कुचैले कपड़े, जीर्ण स्वास्थ्य आदि ने हिंदी कविता में पहली बार पंत के यहाँ ही जगह पाई। ध्यान रखने की बात है कि किसी वस्तु, विषय को कवि के देखने की पद्धति ही उसकी जीवन-दृष्टि और काव्य-दृष्टि का संकेत देती है। गाँव, किसान, गंवई लड़के को कवि इस तरह देखते हैं –

मिट्टी के मैले तन अधफटे कुचैले जीर्ण वसन
ज्यों मिट्टी के बने हुए ये गंवई लड़के भू के धन
कोई खंडित कोई कुण्ठित, कृशबाहु पसलियाँ रेखांकित
टहनी-सी टाँगें, बड़ा पेट, टेढ़े-मेढ़े विकलांग घृणित।

अभाव, भूख, कुपोषण, शोषण के भुक्तभोगी का ऐसा तीखा विवरण उस काल में कविता में लाना बड़ी बात थी। चित्र खींचकर भौंचक कर देना, व्यंग्य का प्रहार करना, वर्णन से बिंब को जीवंत कर देना पंत की कविता की विशेषता थी। इसी वर्णन, व्यंग्य-विधान और चित्र-प्रस्तुति में कवि का जन प्रेम, जनासक्ति और ग्राम-मोह झलकता है, जब 'ग्राम देवता' कविता में कहते हैं –

राम, राम, हे ग्राम देवता ! यथा नाम
शिक्षक तो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम
विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम

शिक्षक को गांव में पवित्रता की मूर्ति माना जाता है, पूरा समाज उन्हें ग्राम-देवता समझता है, मगर जब वही समाज उस शिक्षक को भांग, ताड़ी और देशी शराब के नशे में लिप्त देखे, तो निश्चय ही वह चौंक उठेगा। शिक्षक तो ग्राम-देवता होते हैं, वे गाँव का भविष्य बनाते हैं। उनके व्यसनी हो जाने की स्थिति पर ही कवि का व्यंग्य ऐसा प्रहारक हुआ है।

'प्रेत का बयान' कविता में यमराज जब प्रेत से उसके मरने का कारण पूछते हैं, तो कवि अपने परिवेश के आर्थिक, राजनीतिक ढाँचे पर टिप्पणी करता है। यहाँ नागार्जुन का व्यंग्य देखें -

उठाकर दोनों बाहें
किट-किट करने लगा प्रेत
किंतु
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज,
नाम नहीं लीजिएगा
हमारे समक्ष फिर किसी भूख का

यमराज और मृत मास्टर के प्रेत के संवाद को अंकित करती यह कविता जमाखोरी, अभाव, भूख, सारे उद्योग-धंधों को तहस-नहस कर देती है। अपना सारा उद्वेग समाप्त कर प्रेत कहता है -

तनिक भी पीर नहीं
दुःख नहीं, दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आंत जब पेचिश का हमला...

यह पूरी कविता व्यवस्था पर आघात करती है। जिस दौर के समाज की सबसे बड़ी विडंबना भूख थी, उस दौर में एक मृतात्मा को, एक प्रेत को उस भूख शब्द से चिढ़ हो गई थी। यमराज से बात करता हुआ प्रेत, बड़े सहज शब्दों में अपने मरने की कहानी कहता है। उसे मरने में कोई तकलीफ नहीं हुई। सहज ढंग से निकले थे प्राण। यह सहजता ही व्यंग्य है।

आधुनिक पूंजीवादी उद्योगों की दुनिया में श्रमजीवियों की दुर्दशा देखकर केदारनाथ अग्रवाल 'युग की गंगा' कविता में कहते हैं -

घाट, धर्मशालें, अदालतें
विद्यालय, वेश्यालय सारे
होटल, दफ्तर बूचड़खाने
मंदिर, मस्जिद, हाट सिनेमा
श्रमजीवी की हड्डी पर टिके हुए हैं।

श्रमजीवियों के खून पसीने से तैयार ये महल, अटारी, हाट, बाजार दुनिया को चौंका रहे हैं, मगर यह बात सभी भूल जाते हैं कि इसकी नींव श्रमजीवियों के पसीने से भीगी हुई है। यहाँ कवि सिर्फ स्मरण कराते हैं, बाकी तो पाठक खुद ही समझ जाते हैं।

हिंदी कविता में प्रगतिवाद की आगमन की घोषणा से एक नया वैयक्तिक परिवेश निर्मित हुआ। 'कुकुरमुत्ता' 'गुलाब' को पूँजीवादी मानकर डाँटता है -

अबे, सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराहा केपिटलिस्ट!
कली जो चटकी अभी
सूखकर कांटा हुई होती कभी
रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी .....!

व्यंग्य और धिक्कार की निराला की यह शैली प्रगतिवादी कविता में विषय वैविध्य के साथ अगली पीढ़ी में भी फली-फूली। 'कुकुरमुत्ता' कविता छायावादोत्तर काल के प्रारंभिक दौर की कविता है। इस कविता ने न केवल महाकवि निराला के काव्य शिल्प और कथन शैली के नए स्वरूप का संकेत दिया बल्कि परवर्ती और समवर्गीय कवियों के लिए काव्य भाषा का एक सूत्र भी थमाया। आगे आकर नागार्जुन में वही सामान्य, निहायत मामूली, रोजमर्रे के जीवन से लिया गया अपारंपरिक विषय, ठेठ शब्दावली, चलताऊ भाषा, जनपदीय मुहावरे, चौपाली अंदाज आदि सब के सब दिखाई देते हैं। दरअसल प्रगतिशील चेतना के साथ काव्य क्षेत्र में आए रचनाकारों ने काफी सोच-समझ कर इस क्षेत्र में अपने पाँव रखे थे।

6.6.2 श्रम-शक्ति पर आस्था

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने के बाद तानाशाही से मानवीय मूल्य की रक्षा सर्वोपरि हो गई थी। यही कारण है कि सन् 1942 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का तीसरा सम्मेलन हुआ, जिसकी चर्चा का मुख्य विषय फासीवाद विरोध था। सन् 1943 में यह सम्मेलन साम्यवादी नेता श्रीपाद अमृत डांगे की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। सन् 1943 को दिल्ली में फासीवाद विरोधी सम्मेलन हुआ और सन् 1943 में ही सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय के संपादन में प्रयोगधर्मी सात कवियों की कविताओं का सवक्तव्य संकलन प्रकाशित हुआ। इस संदर्भ में इन्हें भी ध्यान में रखने की जरूरत है। सन् 1947 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन महापंडित राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में हुआ। प्रगति के नए रास्ते खोलने और उसका पथ प्रशस्त करने की गतिविधि की चर्चा उस अधिवेशन में हुई। लेखक संघ का विस्तार देश के कई प्रान्तों और जिलों में हुआ। जिला तथा प्रांतीय स्तर के कई सम्मेलन आयोजित हुए। बड़े-बड़े रचनाकारों ने इन अधिवेशनों, सम्मेलनों की अध्यक्षता की।

ऐसी प्रगति कामना और प्रगति चेतना से भरी हुई काव्यधारा जब अपनी पूरी ताकत से आगे बढ़ी तो जाहिर है कि उसमें रूस, मास्को, मार्क्स, लेनिन, हंसिया-हथौड़ा आदि सबको जगह मिली, सबका उपयोग हुआ; मगर यह उपयोग कोई फैशन नहीं था। केदारनाथ अग्रवाल की 'एक बच्चे के जन्म पर' लिखी कविता में 'एक हथौड़े वाला घर में और हुआ' पंक्ति इस तरह से पढ़ना चाहिए -

एक हथौड़े वाला घर में और हुआ
हाथी-सा बलवान जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज-सा इंसान, तरेरी आँखों वाला और हुआ
माता रही विचार अंधेरा हरने वाला और हुआ

यह समझने में किसी को कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि एक मजदूर परिवार अपनी नवजात संतान के लिए जो सपने देख सकता है, वे सारे सहज सपने हैं। हथौड़े के साथ-साथ उसे कहीं असहाय होने का और दुर्गतिबोध नहीं है। हर जगह जोश है। उस परिवार को हाथी-सा बलवान, सूरज-सा इंसान, तरेरी आँखें, अंधेरा हरने वाला, कयामत ढाने वाला ...उस बच्चे में सब कुछ दिखता है। यह सारा कुछ देखने की प्रक्रिया कवि की अपनी जीवन दृष्टि के आधार पर होती है।

मन थक जाने के बाद भी थकता नहीं है, उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचने की चिंता सवार रहती है। 'पूस मास की धूप सुहावन' उन्हें घिसे हुए पीतल की तरह पांडुर लगती है, स्तनपान करते गौर वर्ण के बच्चों के गाल की तरह मनभावन लगती है -

पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा चिर-रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ-भार से अलग शिथिल हैं अंग-अंग
मुंह पर उसके मटमैली आभा
छप्पर पर बैठी है बिल्ली
किसके घर जाने क्या कुछ खा आई है
चला चलाकर जीभ स्वाद लेती ओठों पर ...

ये सारे, पूस की सुहानी धूप का सुख चख रहे हैं, मगर अपने-अपने कामों में लगे रहकर। इधर, जलावन के अभाव में आगे का सब सुख छिन जाएगा। यह सुहानी धूप, ऊष्मा तो दे सकती है, आग नहीं। वह आग, वह ताप, जो अनाज पकाएगी। इसलिए कवि कहते हैं -

जहाँ कहीं से एक अठन्नी लानी होगी
वर्ना इस चूल्हे के मुँह पर फिर मकड़ी का जाला होगा ...

प्रगतिशील कवि का निम्न मध्यवर्ग इस तरह जुझारू होता है। यह धूप त्रिलोचन को 'धूप सुंदर' कविता में किसानों के खिले चेहरे पर सरसों से भरे खेत की आभा के रूप में दिखी। जग सुंदर दिखा। प्रकृति चित्रण करते वक्त भी उन्हें मानव और जग याद आया -

सघन पीली
उर्मियों में
बोर हरियाली सलोनी
झूमती सरसों
प्रकंपित वात से
अपरूप सुंदर
धूप सुंदर
धूप में जग सुंदर ...

इस सुंदर धूप को देखकर त्रिलोचन का मन पुलक उठता है। वे सोचते हैं -

क्या कभी
मैं पा सकूंगा

इस तरह
इतना तरंगी
और निर्मल
आदमी का
रूप सुंदर!
धूप सुंदर! ...

प्रगतिवादी कवियों की यही जनोन्मुखी लालसा, यही सौन्दर्यबोध, आम जन के उल्लास में अपने सारे सुख और उल्लास की खोज करने की प्रवृत्ति उनकी काव्य दृष्टि को, रचना कौशल को और जन सरोकार की बुनियाद को संपन्न किए हुए थी। यह धूप केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ 'मैके आई हुई लड़की की तरह मगन होकर घूमती हुई' आती है। यह कवि की अंतश्चेतना और लोकोन्मुखी चिंतनधारा ही है कि उन्हें चीजों को देखने का अलग नजरिया देता है। त्रिलोचन शास्त्री ने लिखा –

अपनी मुक्ति कामना लेकर लड़ने वाली
जनता के पैरों की आवाजों में मेरा
हृदय धड़कता है ...

केदारनाथ अग्रवाल ने किसान के बेटे को उत्तराधिकार में मिली संपत्ति का वर्णन इस तरह से किया है –

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलबा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि – वह भी परती
कंचन सुमेरु का प्रतियोगी
द्वारे का पर्वत घूरे का
बनिए के रूपयों का कर्जा
जो नहीं चुकाने पर चुकता
बस यही नहीं, जो भूख मिली
सौ गुनी बाप से अधिक मिली ...।

किसान, मजदूर और आम नागरिक पर हो रहे अत्याचार, मानव मूल्य की अवहेलना, अभाव और भूख, आर्थिक शोषण, सामंतों द्वारा हो रहे उत्पीड़न, वर्ग भेद, जाति भेद, फिरंगियों के अनाचार ... इन सबके विरोध और स्वाधीनता की मुखर मांग के साथ प्रगतिवादी कविता आगे बढ़ी थी। प्रगतिवाद के पृष्ठभूमि काल में ही रामविलास शर्मा ने सारे अत्याचार को अंगूठा दिखाते हुए अपनी कविता 'किसान कवि और उसका पुत्र' में घोषणा कर दी –

यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है
भय से सिहर उठे वह तरु का पात नहीं है ...

पूँजीपतियों के प्रति यह सीधे-सीधे धमकी के स्वर हैं। किसान मजदूरों की शक्ति के प्रति उन्होंने ऐसी अटूट आस्था पाल रखी थी कि 'सत्यं शिवं सुंदरम्' कविता में आजादी की पूरी लड़ाई का श्रेय जीतने से पहले उन्होंने मजदूर किसान को दे दी –

देश हमारा हिंदुस्तान
लाखों ही मजदूर-किसान
इस धरती पर बसने वाले
उसके हित पर मिटने वाले
क्या भागेंगे ताबड़तोड़
हिंदी हम चालीस करोड़
यह आजादी का मैदान
जीतेंगे मजदूर-किसान ...

प्रगतिवाद ने हमारे साहित्यकारों को सामाजिक यथार्थ दृष्टि दी, उनकी चिंतन प्रक्रिया और परिवेश को देखने की पद्धति को प्रभावित किया। कवि आसमान से उतर कर जमीन पर आ गए, वन-प्रान्तर से निकलकर समाज और मानव के बीच आ गए। प्रकृति, प्राकृतिक सुषमा और मौसम में उन्हें मानव, मानवीय उल्लास और मानव हित में काम वाले उपादान याद आने लगे। सुमित्रानंदन पंत ने कहा –

देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से
सोच रहा हूँ जटिल जगत पर जीवन पर जन मन से ...

पूरे विश्व को गाँव की नजर से देखने और पूरे जगत पर आम जनता के मन से सोचने का यह आचरण कितना ममत्व भरा है! नजरिए के इस परिवर्तन ने ही प्रकृति को देखने की दृष्टि बदल दी। कवि को फिर प्रकृति में 'फैली खेतों में दूर तलक मलमल की कोमल हरियाली' दिखने लगी, 'लहलह पालक महमह धनिया', 'लाल लाल चित्तियाँ पड़े पीले-पीले मीठे अमरूद', 'अरहर सनई की सोने की किंकिणियों', 'तीसी की नीलम कला', 'सरसों की उड़ती भीनी तैलाक्त गंध' दिखने लगी। प्रकृति के ग्रामीण परिवेश और कृषि जीवन को इस उल्लास के साथ देखने की पद्धति प्रगतिशील चेतना की ही परिणति थी। इस दृष्टि ने कवि की स्मृति तक में लोक चेतना भर दी। नागार्जुन को अपने गाँव की याद इस तरह आती है –

याद आता है मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आती हैं लीचियाँ और आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचित भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनी और तालमखान
याद आते शस्य श्यामल जनपदों के
– रूप गुण, अनुसार ही रखे गए वे नाम ...

केदारनाथ अग्रवाल तो वसंती हवा की हरकतों को भी जनोल्लास की तरह पहचान लेते हैं।

हवा का मानवीकरण करना निहायत कल्पना है। यथार्थ और कल्पना का ऐसा समन्वय प्रगतिवाद से पहले कभी संभव न था। केदारनाथ अग्रवाल तो फसलों का 'स्वयंवर' तक रचा देते हैं –

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरेठा शीश पर –
छोटे गुलाबी का, सजकर खड़ा है ...

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6.6.3 प्रेम का स्वरूप

प्रगतिशील कवियों की जीवन-दृष्टि की विराटता उनकी प्रेम कविताओं में भी स्पष्ट दिखता है। यहाँ प्रेम अपने भव्य विराट और उदार स्वरूप में चित्रित है। प्रयोगवादी कवियों के प्रेम-संबंध की तरह, यहाँ का प्रेम संकुचित नहीं है, जीवन और यथार्थ से कटा हुआ नहीं है। यहाँ प्रेम स्वस्थ, स्वच्छंद और स्फूर्तिदायक दिखता है। उसे संपूर्ण जीवन और समाज के अंग की तरह स्वीकारा गया है, यह प्रेम वैयक्तिक और क्षणिक अनुभूति से बाहर आकर विराट रूप धरता है; समाज और राष्ट्र तक विस्तार पाता है। त्रिलोचन शास्त्री के यहाँ प्रेम, जीवन की सारी निस्तरंग पीड़ा हर लेता है, यहाँ प्रेम का स्वरूप संगीत की मधुर अनुगूंज की तरह दूर-दूर तक फैलता है। कोई परदा नहीं, कोई छिपाव नहीं, प्रेम के प्रभाव का विस्तार यूँ है कि –

यों ही कुछ मुस्काकर तुमने
परिचय की वह गांठ लगा दी

था पथ पर मैं भूला-भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन लहर थी उस दिन
तुमने अपनी याद जगा दी

कभी कभी यों हो जाता है
गीत कहीं कोई गाता है
गूंज किसी उर में उठती है
तुमने वही धार उमगा दी

जड़ता है जीवन की पीड़ा
निस्तरंग पाषाणी क्रीड़ा
तुमने अनजाने वह पीड़ा
छवि के शर से दूर भगा दी!

प्रगतिशील कवियों के यहाँ प्रेम खोए हुए को रास्ता दिखाने वाला, जीवन की जड़ता मिटाने वाला और संगीत के लय की तरह तन-मन तक फैलने वाला है। प्रगतिशील धारा का प्रेम व्यक्ति के मन में मानव, समाज, राष्ट्र और विश्व तक से प्रेम करने और प्रेमासक्ति से अनुरक्त रहने को प्रेरित करता है। तभी तो त्रिलोचन कहते हैं –

मुझे जगत-जीवन का प्रेमी
बना रहा है प्यार तुम्हारा ...

जिस दौर के कवि की प्रेमानुभूति इतनी विराट होगी, अपने प्रेम का विस्तार जगत-जीवन से प्रेम तक में करता होगा, वह उस जगत पर मंडराते संकट को भी अपने निजी संकट की तरह समझता होगा और संकट मुक्त जगत में अपने को संकट मुक्त देख पाता होगा।

6.7 स्वातंत्र्योत्तर-काल में प्रगतिशील चेतना

स्वाधीनता के बाद देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन हुआ। मुट्‌ठी भर लोग आजादी के जश्न में लिप्त हो गए, आम नागरिक 'स्वाधीनता' जैसी अमूर्त्त व्यवस्था की कल्पना को यथार्थ मानकर, सपनों को पूरा हुआ मानकर कुछ दिनों

तक बेफिक्र रहा, मगर रचनाकारों और बुद्धिजीवियों की नजर थोड़ी-सी आशंकित थी। उस समय प्रगतिवादी कवियों ने देश की आजादी को स्वीकार नहीं किया। इसलिए इन कवियों ने मोहभंग की कविताएँ लिखीं। तेलंगाना किसान-आंदोलन के दौरान नए स्वदेशी सत्ताधीशों की नीति देखकर नागार्जुन को तत्काल लग गया कि 'पहचाना अब, चोर-चोर मौसेरे भाई।' भारत की नई शासन व्यवस्था के अपवित्र गठबंधन पर नागार्जुन ने तत्काल अपनी प्रतिक्रिया दी -

अंग्रेजी-अमरीकी जोंकें, देशी जोंके एक हुईं
नेताओं की नीयत बदली, भारत माता की टेक हुई...

वैसे तो नागार्जुन की शैली प्रारंभ से ही व्यंग्यात्मक रही है, पर आजादी के बाद उनकी व्यंग्य शैली कुछ और आक्रामक हो गई। आक्रोश से भरे उनके व्यंग्य का एक नमूना देखिए–

सुनो, सुनोजी, थिरक उठे हैं, फिर से वही राग-दरबारी
वही सिपाही, वही मुलाजिम, वे अफसर वे ही अधिकारी
देखो देखो वापिस आए, सारे ही मुंशी पटवारी
आसन-फासन शुरू हुए, हवन हो गए फिर से जारी ...

प्रगतिशील काव्य सृजन में जुड़े लोगों की मूल पहचान उनकी सुचिंतित विचारधारा और जीवन दृष्टि ही थी। जब मुक्तिबोध ने लिखा कि -

वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को

जन को।

तो उन्हें पूँजी से जुड़े लोगों में खोट दिखा, आम जन में नहीं।

प्रगतिशील हिंदी कविता के अगले दौर पर नजर डालते हुए यह साफ दिखता है कि तारसप्तक (सन् 1943) के प्रकाशन के बाद कुछ समय के लिए हिंदी कविता व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, क्षणानुभूति, और कवि की आत्मकेंद्रिकता का शिकार हो गई थी। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय के संपादन में तारसप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक का प्रकाशन हुआ। प्रगतिवाद के दौर के, और उसके बाद की पीढ़ी के कई कवियों को इन सप्तकों में शामिल किया गया। मगर, तथ्य है कि उनमें से गजानन माधव मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की रचनाओं पर प्रयोगवाद के क्षणवादी, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का असर देर तक नहीं रह सका। शीघ्र ही इन लोगों ने उस व्यक्तिवाद, आत्मकेंद्रिकता और क्षणवाद से फुरसत पा ली और काव्य-सृजन में जीवन के प्रति समग्रता भरी सकारात्मक दृष्टि अपनाई। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, शील आदि तो निरंतर प्रगतिशील धारा की कविता लिखते ही रहे। इन कवियों की कविताओं में जीवन के प्रति समग्र दृष्टि नजर आई।

सन् 1947 से बीस वर्षों तक कांग्रेसी सरकार की नीति देखकर, सन् 1967 के आम चुनाव के परिणाम के बाद जो नई पीढ़ी तैयार हुई, उसका रोष, क्षोभ तीस-पैंतीस वर्ष से रचनाशील अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में थोड़ा तल्ख था, मगर विचार-पद्धति सुदृढ़

और सुविचारित ही रही थी। यहाँ तक आते-आते इस पीढ़ी की कविता की भाषा में प्रहार बढ़ गया था। धूमिल ने कहा -

> अपने यहाँ संसद
> तेली की वह घानी है
> जिसमें आधा तेल है
> और आधा पानी है
> दरअसल, अपने यहाँ जनतंत्र
> एक ऐसा तमाशा है
> जिसकी जान
> मदारी की भाषा है ...

कविता में जनहित के विरोधी पक्ष की पहचान इस तरह की गई। इसी बीच हिंदी कविता में अनास्था के स्वर के कोलाहल, निरर्थकता बोध की धूम से बाहर आकर कविता के प्रति आत्मविश्वास लौटा। रघुवीर सहाय ने कहा -

> कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा
> न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का
> मेरे अंदर एक कायर टूटेगा
> टूट मेरे मन टूट मत झूठ-मूठ ऊब
> मत रूठ मत डूब सिर्फ टूट ...

इस आस्था का लौट आना, मन के भीतर बैठे कायर को टूटने की आज्ञा देना, उस समय की बड़ी घटना थी। कविता में कवि का यही आत्म-संकल्प हिंदी कविता को प्रगतिशील जनवाद से और आगे फिर समकालीन कविता से जोड़ता है।

6.8 प्रगतिवाद की देन

प्रगतिवाद की सबसे बड़ी देन है समाज में प्रगतिशील चेतना का विकास। जन-गण-मन में जैसे ही यह समझ बनी कि मानव शक्ति ही सर्वोपरि है, उसके अंधविश्वास का कोहरा छँट गया; पाप-पुण्य, वर्ग-धर्म की पहचान बदल गई; वर्गविहीन समाज, और शोषण-उत्पीड़न से मुक्त जनजीवन की अवधारणा स्पष्ट हो उठी। इस तरह की प्रगति-चेतना के कारण वैचारिक रूप से उन्नत हुए हर नागरिक के मन में आत्मबोध भर उठा और उसका स्वाभिमान बहुत ऊंचा हो गया। स्वाधीनता की ललक उस काल के रचनाकारों, बुद्धिजीवियों और नागरिकों के मन में तीव्रता से उठी थी, तो उसका मूल कारण यह आत्मबोध और स्वाभिमान ही था। इसी आत्मबोध ने प्रगति-चेतना से संपन्न लोगों के मन में साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, शोषण, जीवन को असहज बनाने वाले आचरण और श्रमजीवियों के प्रति हिकारत भाव रखने वाले लोगों के प्रति घृणा, धिक्कार, क्रोध और तिरस्कार की ज्वाला उठा दी थी। इस धिक्कार और घृणा को कविता में व्यक्त करने का एक तरीका व्यंग्य था। प्रगतिशील रचनाकारों ने व्यंग्य को अपना अचूक हथियार बनाया। व्यंग्य का जितना बहुविध विकास प्रगतिवाद के दौर में हुआ, उतना शायद ही पहले कभी हुआ हो। यहाँ व्यंग्य में कवियों ने अनेक प्रयोग किए। बड़े आराम से फरियाद, वक्तव्य और प्रशंसा की तरह अपनी बातें कही।

6.9 काव्य-शिल्प

प्रगतिवादी काव्यधारा का यह स्वभाव पूरी तरह उसके काव्य-शिल्प में ध्वनित हुआ। उस धारा की तमाम कविताओं पर दृष्टि डालें तो काव्य के विषय, काव्य की भाषा, बिम्ब-प्रतीक योजना, और कविता की लय से नागरिक चेतना तथा कविता का जन-सरोकार समझ में आता है। यहाँ साधारण जन के दुख-विराग ही नहीं, उनके सपने, सरोकार, उल्लास, आतुरता, उत्तेजना, संवेदना, कामना ... सारा कुछ सूक्ष्मता से रेखांकित है। आम नागरिक के जीवन से लिए गए विषय, जनपदीय शब्दावली और प्रचलित मुहावरे, सुपरिचित संदर्भों के प्रसंगों से गढ़े गए बिंब-प्रतीक, अर्थात् ग्राम्य और कृषि जीवन की दिनचर्या में कविता के विषय, बिंब, भाषा और लय की खोज इस दौर की कविता को अधिक जनोपयोगी बनाती है। उत्तरछायावादी काल के समर्थ कवियों ने छंदमुक्ति को प्रमुखता अवश्य दी, पर इसका अर्थ लय से मुक्त होना कदापि नहीं था। प्रगतिवाद के दौर की कविताओं की आत्मा उसकी लयात्मकता में ही पलती रही। लयात्मकता के कारण ही प्रगतिवादी कविताओं में नागरिक-जीवन की गेयधर्मिता उपस्थित हुई। कविता चाहे निराला की हो, या सुमित्रानन्दन पन्त की, या फिर नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री की, लयात्मकता उनमें प्राण डालती रही। छंद की मात्रा की गिनती वहाँ भले न हो, मानव जीवन की सांसों की लय वहाँ एक-एक पद में, यति-विराम में भरा हुआ है।

बोध प्रश्न 2

3. प्रगतिवाद के प्रमुख कवि कौन-कौन हैं?

   ....

   ....

   ....

4. निम्नलिखित कविताओं के कवि का नाम लिखिए :

   क) एक बच्चे के जन्म पर

   ख) धूप सुंदर

   ग) किसान कवि और उसका पुत्र

5. प्रगतिशील कविता में प्रेम का क्या स्वरूप है? (लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6. स्वातंत्र्योत्तर काल की अराजकता को नागार्जुन ने किस तरह रेखांकित किया है? (पाँच पक्तियों में उत्तर दें)

....

....

....

....

....

7. प्रगतिशील काव्यधारा में श्रम के महत्व पर प्रकाश डालिए। (पाँच पंक्तियों में उत्तर दें)।

....

....

....

....

....

8. प्रगतिवाद की मुख्य देन क्या है? (तीन पंक्तियों में उत्तर दें)

....

....

....

6.10 सारांश

प्रगतिशील काव्यधारा अपने प्रारंभिक काल से ही सामाजिक मानवतावाद के बुनियादी सूत्र के साथ विकसित हुई। व्यापक मानव कल्याण एवं लोक मंगल की भावना और प्रेम के विस्तार के कारण यह छायावाद जैसी चट्टान के समक्ष खड़ी हुई और उसके लिए चुनौती साबित हुई। प्रयोगवाद के तुमुल नाद, प्रपद्यवाद, नकेनवाद, अकविता, भूखी पीढ़ी, बिटनीक पीढ़ी आदि के कोलाहल को पारकर, उन सबमें अपना सूत्र छोड़ती हुई वह साठोत्तरी और समकालीन हिंदी कविता में भी अपनी मूल अवधारणाओं के साथ उपस्थित हो गई। आज भी वह हिंदी कविता की प्रमुख काव्यधारा बनी हुई है। छायावाद काल में अनन्त, असीम, असमान, क्षितिज, गिरि-शिखर पर जिनकी निगाहें टिकी रहती थीं, कल्पना और भावोच्छवास में जो तैरते रहते थे, उन्हें जमीन पर उतार लाने, समाज, मानव और ग्राम्य जीवन में तल्लीन करने का श्रेय प्रगतिवाद को ही जाता है।

प्रगतिवाद केवल काव्य प्रवृत्ति नहीं बल्कि व्यापक काव्यांदोलन या साहित्यिक आंदोलन है। प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य शब्द का प्रयोग 1936 के आसपास हुआ। जब प्रगतिशील

लेखक संघ स्थापित हो चुका था पर साहित्य में 1930 के बाद ही यह रुझान प्रकट होने लगा था जिसके पीछे बदली हुई राजनीतिक सामाजिक वास्तविकता थी। अंतर्वस्तु की दृष्टि से प्रगतिवाद में ऐतिहासिक चेतना, सामाजिक यथार्थ-दृष्टि, परिवेश या प्रकृति के प्रति लगाव, जीवन के प्रति स्वीकृति का भाव, मानवीय संबंधों में समानता का आग्रह और भविष्योन्मुखी दृष्टि का महत्व है। इस इकाई को पढ़ने के बाद प्रगतिवाद की उपर्युक्त प्रवृत्तियों की विशेषताएँ बता सकेंगे।

प्रगतिशील हिंदी काव्य-धारा के अंतर्गत गांव, प्रकृति, श्रम और प्रेम के स्वरूप के ऊपर भी काव्य देखने को मिलते हैं। स्वातंत्र्योत्तर-काल में प्रगतिशील चेतना का गहरा प्रभाव भी दिखाई देता है।

6.11 उपयोगी पुस्तकें

1. *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ* : नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. *आधुनिक परिवेश और नवलेखन* : शिव प्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
3. *प्रगतिशील साहित्य और मार्क्सवाद* : रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. *कविता का जनपद* : अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
5. *छठवां दशक* : विजयदेव नारायण साही, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. दीजिए 6.1 एवं 6.2
2. क) कार्ल मार्क्स (ख) 1938 (ग) 1936 (घ) रामविलास शर्मा (ङ) सुमित्रानंदन पंत
3. देखिए 6.6
4. क) केदारनाथ अग्रवाल
   ख) त्रिलोचन
   ग) रामविलास शर्मा
5. देखिए 6.7.3
6. देखिए 6.8
7. देखिए 6.7.1 और 6.7.2
8. देखिए 6.9

इकाई 7 प्रयोगवाद एवं नयी कविता

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि
- 7.2.1 प्रगतिवाद और प्रयोगवाद
- 7.2.2 प्रयोगवादकालीन परिस्थितियाँ
- 7.2.3 प्रयोगवाद का अभिप्राय

7.3 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- 7.3.1 विचारधारा से मुक्ति
- 7.3.2 सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण
- 7.3.3 व्यक्तिवाद
- 7.3.4 यथार्थ-दृष्टि

7.4 प्रयोगवाद की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ
- 7.4.1 काव्य-भाषा
- 7.4.2 छंद और लय
- 7.4.3 प्रतीक और बिंब

7.5 प्रमुख प्रयोगवादी कवि

7.6 नयी कविता की पृष्ठभूमि
- 7.6.1 प्रयोगवाद और नयी कविता
- 7.6.2 नयी कविता कालीन परिस्थितियाँ
- 7.6.3 नयी कविता का अभिप्राय

7.7 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- 7.7.1 व्यक्ति-स्वातन्त्र्य
- 7.7.2 आस्था और अनास्था
- 7.7.3 औद्योगिक सभ्यता
- 7.7.4 अनुभूतिपरकता
- 7.7.5 प्रकृति-प्रेम

7.8 नयी कविता की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ
- 7.8.1 काव्य-भाषा
- 7.8.2 छंद और लय
- 7.8.3 प्रतीक और बिंब

7.9 नयी कविता के प्रमुख कवि

7.10 सारांश

7.11 शब्दावली

7.12 उपयोगी पुस्तकें

7.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आधुनिक हिंदी काव्य से संबंधित दो प्रमुख काव्यधाराओं-प्रयोगवाद और नयी कविता का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- प्रयोगवाद और नयी कविता के उद्भव की पृष्ठभूमि बता सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ बता सकेंगे; तथा
- प्रयोगवाद और नयी कविता से संबंधित प्रमुख कवियों और उनकी प्रमुख काव्य रचनाओं का परिचय दे सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस खंड में आपने अब तक आधुनिक हिंदी काव्य की दो प्रमुख धाराओं छायावाद और प्रगतिवाद का अध्ययन कर लिया है। इनके अतिरिक्त छायावाद के तत्काल बाद उभरी उत्तरछायावादी राष्ट्रवादी-स्वच्छंदतावादी काव्य प्रवृत्तियों का भी संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर चुके हैं। छायावाद से प्रगतिवाद तक के इस विकास के बाद हिंदी काव्य की धारा फिर एक नई दिशा की ओर मुड़ी। इस नए उभार को प्रयोगवाद कहा गया।

प्रयोगवाद का आरंभ कब और क्यों हुआ? यह काव्यधारा अपने पूर्व की काव्यधाराओं से किन अर्थों में भिन्न थी? वस्तु और रूप दोनों दृष्टियों से इस काव्य की क्या विशिष्टताएँ हैं, इन सभी बातों का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। हम आपको यह भी बताएँगे कि इस काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन-कौन हैं और उनका क्या योगदान है? प्रयोगवाद के बाद हिंदी में 'नयी कविता' नामक काव्यधारा का उदय हुआ। प्रयोगवाद और नयी कविता के अंतःसंबंधों की चर्चा करते हुए हम उपर्युक्त सभी पहलुओं की चर्चा नयी कविता के संदर्भ में भी करेंगे।

आशा है इस इकाई को पढ़ने के बाद नयी कविता तक के हिंदी काव्य के विकास की एक पूर्ण तस्वीर आपके सामने आ चुकी होगी। इससे अगली इकाई में आप नयी कविता के बाद के हिंदी काव्य के विकास का अध्ययन करेंगे। भारतेंदु युग से लेकर समकालीन कविता तक का विकास इस बात का द्योतक है कि इस अवधि में हिंदी कविता में तेजी से बदलाव आए हैं। अंतर्वस्तु, रूप, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी कविता लगातार बदलती और विकसित होती रही है। यह विकास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से तत्कालीन स्थितियों में आए परिवर्तनों को समझा जा सकता है क्योंकि हिंदी कविता उन्हीं स्थितियों के बदलाव को ही किसी-न-किसी रूप में व्यक्त करती रही है।

7.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

हिंदी के प्रख्यात कवि अज्ञेय के संपादन में 'तार सप्तक' नाम का एक काव्य-संग्रह सन् 1943 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात कवियों की कविताएँ संग्रहीत थीं- गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द जैन, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय। जब यह संग्रह प्रकाशित हुआ, तब इनमें से अज्ञेय को छोड़कर शेष सभी कवि प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित थे, कुछ तो सीधे-सीधे अपने को कम्युनिस्ट कहते थे। अज्ञेय भी प्रगतिवादियों से बहुत दूर नहीं थे। इसके बावजूद इस संग्रह से काव्य में प्रयोग की चर्चा आरंभ हुई। इसका कारण था- इस पुस्तक की अज्ञेय द्वारा लिखित भूमिका।

अज्ञेय ने 'तार सप्तक' की भूमिका में लिखा था कि संग्रहीत कवि सभी कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं-जो यह दावा नहीं करते कि उन्होंने काव्य का सत्य पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को पाते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी। अज्ञेय के इन कथनों से 'प्रयोगवाद' और 'प्रयोगशीलता' की चर्चा होने लगी। 'दूसरा सप्तक' में अज्ञेय द्वारा यह कहे जाने के बावजूद कि 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है' - प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया।

सन् 1947 में अज्ञेय के संपादन में 'प्रतीक' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसके बाद से लगातार प्रयोगवाद की चर्चा होती रही। वस्तुतः प्रयोगवाद का आरंभ तार सप्तक (1943) से नहीं बल्कि 'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन से माना जाना चाहिए। वैसे भी 1946-1947 से पहले तक प्रगतिशील और गैर-प्रगतिशील कवियों के बीच वैसी खाई नहीं थी, जैसी बाद में देखी गयी। 1946-47 के बाद ही प्रगतिशील कवियों-लेखकों और गैर प्रगतिशील कवियों-लेखकों के बीच मतभेद बढ़ा और प्रयोगवाद प्रगतिवाद के विपरीत रूप-पक्ष पर बल देता हुआ आगे बढ़ा।

7.2.1 प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

प्रतीक (1947) के प्रकाशन के समय प्रगतिशील कहे जाने वाले कई कवियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन होने लगा था। नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र शर्मा, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर आदि कुछ ऐसे ही प्रगतिशील कवि थे। इन कवियों ने इस प्रक्रिया में प्रगतिवाद पर दो आरोप लगाये-एक तो यह कि प्रगतिवाद साहित्य का संकीर्णतावादी आंदोलन है जो लेखकों की स्वतंत्रता का अपहरण कर उसे खास विचारधारा के घेरे में बाँध देता है। दूसरा आरोप यह लगाया गया कि प्रगतिवाद साहित्य के रूप व कला पक्ष की उपेक्षा करता है तथा विषय-वस्तु के संबंध में भी संकीर्ण दृष्टिकोण रखता है। अज्ञेय प्रगतिवाद की सामूहिकता के विरुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक बनकर आगे आये। अतः जब 'प्रतीक' का प्रकाशन आरंभ हुआ तो वे सभी पुराने प्रगतिशील कवि जो प्रगतिवाद से असंतुष्ट थे तथा वे नए कवि जो अभी अपनी दिशा निर्धारित नहीं कर पाये थे अज्ञेय और 'प्रतीक' के इर्द-गिर्द इकट्ठे होने लगे। इस प्रकार अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक बनकर उभरे।

अज्ञेय ने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अंतर को स्पष्ट किया है। अज्ञेय के अनुसार मानव के प्रति दो दृष्टिकोण मिलते हैं। एक में मानव-व्यक्ति पर आग्रह है अर्थात् व्यक्ति के रूप में मनुष्य केन्द्र में है, दूसरे में, मानव सामाजिक इकाई के रूप में है। पहले में विषय पर

आग्रह है, साथ ही सौन्दर्य और रूप विधान के प्रतिमानों को स्वीकार करते हुए चलती है जबकि दूसरे का आग्रह विषय पर नहीं विषय की स्थिति पर है और वह रूप-विधान की परवाह नहीं करता। अज्ञेय के कथन का तात्पर्य यह है कि प्रगतिवाद में विषय के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण रहता है और कला-पक्ष की उपेक्षा रहती है जबकि प्रयोगवाद में रचना का कलात्मक उद्देश्य कभी संदिग्ध नहीं रहता।

वस्तुतः प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ से साहित्य को संपृक्त करते हुए उसे संघर्ष का माध्यम बनाता है जबकि प्रयोगवाद साहित्य के रूप संबंधी नवीन प्रयोगों पर बल देता है तथा साहित्य के सामाजिक पक्ष की उपेक्षा करता है। प्रगतिशील आंदोलन और साहित्य का संबंध राष्ट्रीय स्वाधीनता से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है जबकि प्रयोगवाद शुद्ध रूप से एक साहित्यिक काव्य आंदोलन था। उसकी प्रतिबद्धता किसी विशेष विचारधारा से नहीं थी और काव्य के कलापक्ष के प्रति इसमें आग्रह अधिक था।

7.2.2 प्रयोगवादकालीन परिस्थितियाँ

साहित्य में प्रयोगवाद की प्रवृत्ति के उदय का क्या कारण है? प्रगतिवाद का आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष से घनिष्ठ रूप से जुड़ा था, लेकिन जब आजादी हासिल हो गयी तो मध्यवर्ग के सम्मुख कोई ऐसा आदर्श नहीं रहा जो उन्हें किसी बाह्य सामाजिक आदर्श से जोड़ पाता। देश के नव-निर्माण ने उनमें नवीन आकांक्षाओं को जगाया। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ना शुरू किया। दूसरी ओर विश्व स्तर पर अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी शिविर और सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव ने भी लेखकों के एक बड़े हिस्से को प्रभावित किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दौरान साम्राज्यवादी देशों ने कम्युनिस्ट देशों और मार्क्सवादी विचारधारा के विरुद्ध प्रचार किया। इस प्रचार ने लेखकों और बुद्धिजीवियों को भी प्रभावित किया। इस बात को प्रमुखता दी जाने लगी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता ही सर्वोत्तम मूल्य है। साम्यवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी देशों में व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। वहाँ लोकतंत्र और मानव मूल्य सुरक्षित नहीं है। प्रयोगवाद के उदय में इन परिस्थितियों ने भी अपनी भूमिका निभाई। प्रयोगवाद के उदय का एक कारण यह भी था कि प्रगतिवादी आंदोलन में धीरे-धीरे संकीर्णतावादी दृष्टिकोण का प्रवेश होने लगा। जीवन के व्यापक अनुभवों की बजाए कुछ खास तरह के जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाने लगा। कलात्मक श्रेष्ठता की बजाए प्रचार को अधिक प्रश्रय दिया गया। इस स्थिति ने नए कवियों-लेखकों में असंतोष उत्पन्न किया। उन्होंने नए मार्ग की तलाश आरंभ की। प्रयोगवाद इसी नई सोच का वाहक बनकर प्रवर्तित हुआ।

7.2.3 प्रयोगवाद का अभिप्राय

'तार सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने काव्य को प्रयोग का विषय माना था। उनके इस कथन से ही काव्य में प्रयोग को लेकर चर्चा बढ़ने लगी और धीरे-धीरे प्रगतिवादी काव्य से भिन्न कविताओं को प्रयोगवादी कविता कहा जाने लगा। लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म मानते थे। काव्य के कला पक्ष और रूप-पक्ष पर बल देते हुए भी प्रयोगवाद सिर्फ काव्य का कलावादी आंदोलन नहीं था बल्कि इससे अधिक यह काव्य के क्षेत्र में नए विचारों और मतों का वाहक भी था। अज्ञेय ने कहा था, 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं।' अज्ञेय के इस कथन में केवल प्रयोग को वाद मानने से ही इंकार नहीं है बल्कि किसी

विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्धता को भी वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय का मानना है कि काव्य में किसी विचारधारा के प्रति आग्रह से व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। धर्मवीर भारती, रघुवंश, विजयदेवनारायण साही आदि कवियों-समीक्षकों की दृष्टि में भी 'प्रयोगशील कविता कई अर्थों में टेकनीक और अभिव्यंजना का आंदोलन है'।

अज्ञेय यह मानते हैं कि प्रयोग दोहरा साधन है। ''एक तो उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह अभिव्यक्ति कर सकता है।'' अज्ञेय एवं अन्य लेखकों के उपर्युक्त कथनों से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं:

क) प्रयोगवाद में विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता का आग्रह नहीं है।

ख) प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा रूप और शिल्प को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

ग) प्रयोग का संबंध नयी विषय-वस्तु की खोज से भी है और उस विषय-वस्तु को प्रेषित करने के ढंग से भी है।

अगर हम उपर्युक्त बातों पर गौर करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रयोगवाद काव्य में नये दृष्टिकोण को लेकर सामने आया जो पूर्ववर्ती काव्यधारा-प्रगतिवाद से भिन्न था।

7.3 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, विचारधारा की तुलना में अनुभव को, विषयवस्तु की तुलना में कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता। प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए हमें उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखना चाहिए। प्रयोगवाद के स्वरूप को समझने के लिए हम उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

7.3.1 विचारधारा से मुक्ति

प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। स्वयं अज्ञेय ने कहा 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। ' प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद या विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुँचा सकती। राजनीतिक पक्षधरता को वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय के अनुसार 'हमारा जन्म लेना ही पक्षधर होना है'। जीवन-संघर्ष में वह किसी बाह्य सत्य, किसी वैज्ञानिक दर्शन की उपयोगिता को स्वीकार नहीं करते। उनका प्रश्न है कि जिस विचार-दर्शन के सहारे हम जीवन-पथ पर चलने का निर्णय करते हैं, वह कब तक हमें सहारा देगा। उसका कितना भरोसा किया जा सकता है:

यह जो दिया लिये तुम चले खोजने सत्य, बताओ
क्या प्रबंध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकम्पित, उज्ज्वल, एकरूप, निर्धूम?
(साधना का सत्य, कितनी नावों में कितनी बार)

7.3.2 सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण

डॉ. नामवर सिंह ने 'सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण' को प्रयोगवाद की दूसरी विशेषता माना है। जब एक बार प्रयोगवादी कवि ने विचारधारा से अपने को अलग कर लिया तब सत्य को जानने के लिए निरंतर अन्वेषण आवश्यक हो गया। अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कहा था, 'प्रयोग दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।'

अज्ञेय के विचारों का तात्पर्य यह है कि प्रयोगवादी कवि उस सत्य की भी खोज करता है, जिसे वह काव्य में व्यक्त करना चाहता है और उस माध्यम की भी खोज करता है जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है। इस प्रकार सत्य का अन्वेषण प्रयोगवाद की एक प्रमुख विशेषता है। प्रयोगशीलता की पहचान इसी प्रवृत्ति में अंतर्निहित है।

7.3.3 व्यक्तिवाद

प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर विशेष बल दिया है। 'नदी के द्वीप' कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंधों पर विचार किया है। उनके अनुसार व्यक्ति द्वीप के समान है जो काल रूपी नदी के बीच दृढ़ता से अवस्थित रहता है। वह समाज रूपी भूखंड की तरह नदी को गंदला नहीं करता। 'नदी के द्वीप' कविता में व्यक्ति और समाज अलग-अलग हैं। उनकी अन्य कई कविताओं में भी व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व पर बल दिया गया है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजी है। छायावाद में भी मध्यवर्ग का ही व्यक्ति केन्द्र में था परन्तु वहाँ उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी थी, वह आत्म विकास की ओर अग्रसर था, उसकी व्यक्ति-चेतना सामंती रूढ़ियों और बंधनों से मुक्त होना चाहती थी। प्रगतिवाद ने इस मध्यवर्ग के व्यक्ति को समाज से और सामूहिक चेतना से जोड़ा। इसके कारण मध्य वर्ग के व्यक्ति में व्यक्तिवादिता का उदय नहीं हुआ परन्तु प्रयोगवादी दौर में मध्यवर्ग का असंतोष सामाजिक धरातल पर व्यक्त होने की बजाए वैयक्तिक धरातल पर व्यक्त हुआ। समाज से कटा हुआ व्यक्ति केवल अपने दर्द को व्यक्त करने लगा। आशा और विश्वास की जगह निराशा और अनास्था ने ले ली। इस प्रकार प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की भावनाएँ ही प्रमुख होती चली गईं।

7.3.4 यथार्थ-दृष्टि

प्रयोगवादी कविता में भावुकता की बजाए बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। जीवन के यथार्थ को रंगीन, मोहक और भावमय रूप में प्रस्तुत करने की बजाए प्रयोगवाद ने उसे सहज और साधारण रूप में प्रस्तुत किया। यद्यपि प्रयोगवादी कवि का जीवनानुभव बहुत सीमित था, परन्तु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप में ही व्यक्त हुआ। इसका उदाहरण हम प्रकृति और नारी संबंधी कविताओं में देख सकते हैं।

छायावादी और प्रयोगवादी कविता में नारी-चित्रण की तुलना करते हुए डॉ.नामवर सिंह ने लिखा है कि ''छायावादी कवि प्रायः प्रकृति की मोहक पृष्ठभूमि में अथवा सुंदर प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से नारी की छाया-प्रतिमा निर्मित करते रहे, लेकिन प्रयोगवादी कवि ने यहाँ भी अप्सरामयी नारी को स्पप्नस्थित गरिमामय पद से उतारते हुए सामान्य भावभूमि

पर प्रतिष्ठित कर दिया।" अज्ञेय आधुनिक युग के साधारण व्यक्ति को यौन-वर्जनाओं का पुंज मानते हैं। शायद यही कारण है कि प्रयोगवाद में प्रेम की अभिव्यक्ति कहीं-कहीं प्रकृतवाद के धरातल पर हुई है। यह अवश्य है कि प्रयोगवादी कविताओं में प्रेम भावुकतापूर्ण और लिजलिजे रूप में व्यक्त नहीं हुआ है बल्कि बौद्धिक धरातल पर व्यक्त हुआ है। उदाहरण के लिए 'हरी घास पर क्षण भर' कविता में अज्ञेय प्रेमाभिव्यक्ति करते हुए सामाजिक वास्तविकता को नहीं भूलते। प्रेम की भावना का एक आयाम यह भी है कि व्यक्ति प्रेम में डूबकर दुनिया की सुधबुध खोने की बजाय समाज के प्रति उदात्त और जीवन के प्रति अधिक संघर्षशील बने। गिरिजाकुमार माथुर की 'तैंतीसवीं वर्षगांठ' में यही भावना व्यक्त हुई है। कवि कहता है कि उम्र की इस मीनार पर केवल प्रिय का प्यार ही शक्ति देता है जिससे कि संसार के जुल्म से लड़ा जा सके। कवि अपनी प्रिया से कामना करता हैः

लाल आंचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उंगलियों से ओंछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये संवार दो।

प्रयोगवादी कवियों ने प्रकृति-चित्रण में भी इसी यथार्थ-दृष्टि का परिचय दिया है। वे प्रकृति की सूक्ष्म गतिविधियों को, उसके रूप, रस, स्पर्श, गंध और स्वर के अनुभवों को शब्दबद्ध करने की कोशिश करते हैं। अज्ञेय, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर आदि की कविताओं में हम प्रकृति के विभिन्न रूप देख सकते हैं।

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे,
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका।
(अभी गीला पड़ा है।)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और.......
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।

(उषा : शमशेर)

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

1) प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में कुछ अंतर नीचे बताए गए हैं। इनमें जो अंतर सही नहीं हो उनके आगे (✕) का चिह्न लगाइए।

क) प्रगतिवाद में समाज केन्द्र में होता है जबकि प्रयोगवाद में व्यक्ति। ( )

ख) प्रगतिवाद में कला पक्ष का अधिक महत्व होता है जबकि प्रयोगवाद में विषय-वस्तु का। ( )

ग) प्रगतिवाद में व्यक्ति की समस्याओं की प्रधानता होती है जबकि प्रयोगवाद में व्यक्ति की समस्याओं का चित्रण नहीं होता। ( )

घ) प्रगतिवाद आंदोलन का संबंध स्वाधीनता संघर्ष से था जबकि प्रयोगवाद केवल साहित्यिक आंदोलन रहा। ( )

2) निम्नलिखित विशेषताओं में से जो प्रयोगवाद पर लागू न हो, उनके आगे (×) का चिह्न लगाइए।

क) प्रयोगवाद मार्क्सवाद के प्रति पक्षधरता का समर्थक है। ( )

ख) प्रयोगवाद में "वाद" का आग्रह नहीं है। ( )

ग) प्रयोगवाद की कविता में शिल्प पक्ष पर विशेष ध्यान रखा जाता है। ( )

घ) प्रयोगवाद में सत्य की सतत खोज पर अधिक बल दिया जाता है। ( )

3) प्रयोगवाद में व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए। उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास

1) प्रयोगवादी कविता का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ और ये परिस्थितियाँ पूर्व से किन रूपों में भिन्न थीं? लगभग 100 शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

7.4 प्रयोगवाद की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ

प्रयोगवाद में वस्तुपक्ष की अपेक्षा रूप-पक्ष पर अधिक बल दिया गया है, यह पहले कहा जा चुका है। अज्ञेय ने भी कहा कि प्रयोगवादी कविता में सौंदर्य पक्ष और रूप-विधान उत्कृष्ट होता है। किंतु हम यह भी बता चुके हैं कि प्रयोगवाद केवल कलापक्ष पर ही जोर नहीं देता बल्कि अंतर्वस्तु की दृष्टि से भी वह पहले की कविताओं से भिन्न है। इस भिन्नता को निश्चय ही हम भाषा और शिल्प दोनों स्तरों पर भी देख सकते हैं।

7.4.1 काव्य-भाषा

प्रयोगवादी काव्य की भाषा छायावाद से भिन्न तो है ही, वह प्रगतिवादी कविता से भी भिन्न है। छायावादी कविता की भाषा में कोमलता और सुकुमारता के गुण थे तो प्रगतिवादी कविता में पहली बार कविता की भाषा को बोलचाल के निकट लाने की कोशिश की गयी।

प्रयोगवाद में शब्द-प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया गया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार प्रयोगवादी कवियों की भाषा अधिक सहज और सरल बनी। उसमें अधिक पारदर्शिता और संप्रेषणीयता आई। भाषा में गेयता और आलंकारिता कम हुई। सभी प्रयोगवादी कवियों की भाषा एक-सी नहीं है। अज्ञेय की भाषा आरंभ में दुरूह और बौद्धिक अधिक थी, बाद में भाषा बोलचाल के नजदीक आई। गिरिजाकुमार माथुर की भाषा में गेयता का तत्व अधिक रहा है। आंरभ में उनकी भाषा पर छायावाद का असर देखा जा सकता है। बाद में उनकी कविता की भाषा में बोलचाल का ज्यादा स्वाभाविक रूप दिखाई देता है। शमशेर के शब्द प्रयोग यद्यपि सरल हैं परन्तु अर्थ की दृष्टि से अधिक गहन हैं। वे सिर्फ शब्दों तक ही अपनी कविता के अर्थ को नहीं बाँधते बल्कि उससे आगे उनकी कविता में शब्दों के बीच के मौन अंतराल में काव्यार्थ छिपा होता है।

7.4.2 छंद और लय

छंदबद्ध कविता से मुक्ति का आरंभ छायावाद के समय से ही हो गया था, लेकिन गद्य और पद्य की भाषा के मूल में अंतर क्या हो, यह लगातार विवाद का विषय रहा है। कविता पहले छंद से मुक्त हुई, फिर तुक से, फिर शब्द की लय से। अज्ञेय ने काव्य को 'शब्द' माना है। उनके अनुसार ध्वनि, छंद, लय आदि के सभी प्रश्न शब्द में से निकलते और शब्द में विलय होते हैं। अज्ञेय कविता में किसी-न-किसी रूप में गेय तत्व को आवश्यक मानते हैं।

डॉ.नामवर सिंह ने लिखा है कि ''छायावाद-युग में जो मुक्तछंद वैकल्पिक था, वह प्रयोगवादी कविता का मुख्य स्वर हो गया। मुक्तछंद को ही विशेष रूप से अपनाने के कारण प्रयोगवादियों ने इसमें नये-नये स्वरों और नयी-नयी लयों के प्रयोग किये। छायावाद में प्रायः रोला और घनाक्षरी की लय पर ही मुक्तछंद लिखे गये, लेकिन प्रयोगवाद में सवैया तथा अन्य प्राचीन छंदों की लय को मुक्त ढंग से प्रयोग किया गया।''

प्रयोगवादी कवियों ने गीत भी लिखे हैं लेकिन डॉ.नामवर सिंह के विचार में 'छायावादी गीतों की तुलना में प्रयोगवादी गीत कम मोहक और अधिक सपाट प्रतीत होते हैं।' विशेष रूप से अज्ञेय के गीत में लय की रक्षा अंत तक नहीं हो पाती। गिरिजाकुमार माथुर में अज्ञेय की तुलना में गेयता अधिक है परन्तु अर्थ दृष्टि से वह गहनता नहीं है जो अज्ञेय में है।

7.4.3 प्रतीक और बिंब

अज्ञेय काव्य में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। उनके अनुसार ''कोई भी स्वस्थ काव्य-साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है- या जब जड़ हो जाता है तब वैसा करना बंद करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता है।'' अज्ञेय प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं उनकी चर्चित कविता 'सोन-मछली' इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैः

हम निहारते रूपः
कांच के पीछे हाँफ रही है मछली।
रूप-तृषा भी
(और कांच के पीछे)/
है जिजीविषा

(अरी ओ करुणा प्रभामय)

प्रयोगवादी कविता में प्रतीक 'लाक्षणिक वक्रता' से आगे बढ़कर सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। अज्ञेय के यहाँ प्राकृतिक प्रतीकों का अधिक प्रयोग है। यद्यपि उनमें विविधता कम है। भारत भूषण अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्रायः परंपरागत प्रतीकों का ही प्रयोग हुआ है। इनके यहाँ प्रतीकों के प्रयोग में किसी गहरी सर्जनात्मकता और वैचारिक ऊर्जा के दर्शन नहीं होते। शमशेर के प्रतीक अधिक दुरूह हैं जबकि मुक्तिबोध में मिथकीय, प्राकृतिक और आधुनिक जीवन से लिये गये विभिन्न तरह के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

काव्य-बिंब का संबंध भाषा की सर्जनात्मक शक्ति से है तथा इसका निर्माण मनुष्य के ऐन्द्रिक बोध का ही प्रतिफल है। शब्द, भाव और विचार के अमूर्त संकेत तो हैं लेकिन इन अमूर्त संकेतों में यह शक्ति भी होती है कि वह अमूर्त संकेतों के माध्यम से एक मूर्त चित्र निर्मित कर सकता है। यही बिंब निर्माण की प्रकिया है। प्रयोगवादी कविता बिंब-निर्माण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। अज्ञेय के यहाँ बिंब निर्माण की प्रवृत्ति अधिक है परंतु उनके यहाँ प्रकृति संबंधी बिंब अधिक हैं, सामाजिक जीवन से लिये गये बिंब कम हैं। मुक्तिबोध के यहाँ मानव-स्थितियों से जुड़े बिंब अधिक हैं। मुक्तिबोध नये तरह के बिंबों का अधिक प्रयोग करते हैं। अज्ञेय के काव्य-बिंब प्रायः सामान्य और सरल होते हैं लेकिन वह कभी-कभी उनके द्वारा जीवन की किसी ऐसे समस्या को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते हैं जो उतनी सरल और सामान्य नहीं होती। अज्ञेय की अपेक्षा शमशेर के यहाँ सौन्दर्य-बिंबों का रूप अधिक संश्लिष्ट और सूक्ष्म है। उन्होंने कई कविताओं में प्रकृति के बिंबों को अपनी भावनाओं के साथ इस तरह अंतर्ग्रंथित किया है कि वह केवल वस्तु का चाक्षुष बिंब न होकर कवि का मानसिक प्रतिबिंब बन जाता है, ऐसा मानसिक प्रतिबिंब जिसमें स्वयं कवि का 'मैं' घुलामिला रहता है। उदाहरण के लिए 'एक पीली शाम' कविता को लिया जा सकता हैः

> एक पीली शाम
> पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
> शांत
> मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
> कृश म्लान हारा-सा
> (कि मैं हूँ वह
> मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?)

7.5 प्रमुख प्रयोगवादी कवि

आंरभ में 'तार सप्तक' की चर्चा करते हुए हमने लिखा था कि यद्यपि अज्ञेय ने प्रयोग की चर्चा 'तार सप्तक' (1943) में आरंभ की थी परंतु 'तार सप्तक' को प्रयोगवाद की शुरूआत का आधार नहीं बनाया जा सकता। प्रयोगवाद को विधिवत् मान्यता 'प्रतीक' (1947) और 'दूसरा सप्तक' (1951) से मिली और इन दोनों के प्रकाशन के केन्द्र में अज्ञेय रहे, इसलिए अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक भी माना जाता है। वैसे भी अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि अज्ञेय की अवधारणाओं का प्रयोगवाद से गहरा संबंध है। अज्ञेय के अतिरिक्त जिन कवियों को प्रयोगवादी माना जाता रहा है, उनमें प्रमुख हैं : गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि। इन कवियों में सभी प्रयोगवाद की उपर्युक्त अवधारणाओं से पूर्णतः सहमत नहीं है। उदाहरण के लिए मुक्तिबोध और शमशेर में प्रयोगशीलता की ओर झुकाव तो रहा परन्तु उन्होंने "विचारधारा

के प्रति विद्रोह" कभी नहीं किया। बल्कि वे हमेशा मार्क्सवादी कवि के तौर पर ही पहचाने गये।

अज्ञेय (1911-1987) को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है। प्रयोगवादी काव्य की जो भी विशेषताएँ और सीमाएँ हैं उन्हें श्रेष्ठ रूप में अज्ञेय के काव्य में देख सकते हैं। अज्ञेय का पहला काव्य-संग्रह 'भग्नदूत' (1933) में प्रकाशित हुआ। चिंता (1942) और इत्यलम् (1946) तक की कविताओं में प्रयोगवादी रुझान बहुत साफ उभरकर सामने नहीं आया था। लेकिन 1949 में प्रकाशित 'हरी घास पर क्षण भर' में प्रयोगवाद को स्पष्ट पहचाना जा सकता है। अज्ञेय की आरंभिक कविताओं पर छायावाद का प्रभाव भी देखा जा सकता है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार 'मुक्ति और जीने की लालसा या कहें स्वातंत्र्य की खोज ही अज्ञेय के काव्य की सही जमीन है।' अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति विशेष लगाव के दर्शन होते हैं। उनके अधिकांश प्रिय प्रतीक भी प्राकृतिक हैं जैसे नदी, तट, मछली, सागर, चिड़िया, चाँदनी, इन्द्रधनुष, साँझ आदि। इसके विपरीत उनकी कविताओं में शहरी जीवन के प्रति गहरी वितृष्णा के दर्शन भी होते हैं। औद्योगिक बस्ती, साँप, हवाई यात्रा, ऊँची उड़ान, बड़े शहर का एक साक्षात्कार, पश्चिम के समूह जन, हिरोशिमा आदि कविताओं में आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के प्रति उनके गहरे अलगाव को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। अज्ञेय ने अपनी कविताओं में काव्य सत्य पर विचार किया है। जिजीविषा और सत्य की निरंतर खोज उनकी कविताओं के प्रिय विषय रहे हैं। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनु रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आँगन के पार द्वार (1961), कितनी नावों में कितनी बार (1967), आदि।

अज्ञेय ने काव्य संबंधी समस्याओं पर निरंतर लेखन किया है। त्रिशंकु (1945), आत्मनेपद (1960) और हिंदी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य (1967), में उनके साहित्य संबंधी लेखों को संग्रहीत किया गया है।

गिरिजाकुमार माथुर ने काव्य-यात्रा की शुरूआत मंजीर (1941) से की थी। उनके काव्य की जमीन प्रेम और सौन्दर्य है। नाश और निर्माण (1946), धूप के धान (1955), जो बंध न सका (1968) उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। नारी प्रेम और प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं। गेयता उनके काव्य की खास पहचान है। वे काव्य में नाद-सौन्दर्य को प्रमुख स्थान देते हैं। अज्ञेय की तरह उनकी सौन्दर्य-चेतना सामाजिक जीवन से निरपेक्ष नहीं है। प्रेम और सौन्दर्य दोनों ही संसार के बीच आकार लेते हैं। उनकी कविता में दैहिकता अधिक है, कल्पनाशीलता कम है। प्रयोगवादी कवियों में रूमानियत का सबसे अधिक प्रभाव गिरिजाकुमार माथुर पर ही रहा है। नयी कविता के दौर तक आते–आते उनमें यह रूमानियत कम हुई है।

भारतभूषण अग्रवाल का प्रथम काव्य-संग्रह छवि के बंधन (1941) पर छायावाद का और दूसरा काव्य संग्रह जागते रहो (1942) पर प्रगतिवाद का प्रभाव था। तीसरा संग्रह मुक्तिमार्ग (1947) में उन्होंने अपना अलग रास्ता खोजा। भारतभूषण अग्रवाल की कविताओं में मुख्यतः दर्द की अभिव्यक्ति हुई है, अपनी भी और जगत् की भी। इस दर्द की अभिव्यक्ति कहीं त्रासदी रूप में है तो कहीं व्यंग्य रूप में है। प्रयोग की प्रवृत्ति भारतभूषण अग्रवाल में भी है लेकिन उनकी कविताएँ वक्तव्य-प्रधान अधिक हैं। प्रतीक भी सामान्य और सरल हैं। कविता में भावनाओं की गहराई या जटिल वैचारिकता का अभाव है। उनके अन्य प्रमुख काव्य संग्रह हैंः ओ अप्रस्तुत मन (1959), अनुपस्थित लोग (1965), 'एक उठा हुआ हाथ' (1970) तथा 'उतना वह सूरज है' (1977) आदि।

श्री नरेश मेहता प्रयोगवाद के अन्य प्रमुख कवि हैं। इन पर भी आरंभ में प्रगतिवाद का प्रभाव था। नरेश मेहता की कविता में भी प्रकृति के प्रति गहरे लगाव के दर्शन होते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति अपने विविध रूपों में आती है। नदी, झील, आकाश, बादल, सूरज, चाँद, चिड़िया, फूल, वसंत, पहाड़, घाटी, सावन आदि कई रूपों में प्रकृति उनकी कविताओं में मौजूद है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार, 'नरेश जी की कविता में असंख्य प्रकृति-चित्रों को देखकर लगता है जैसे कवि मन पर प्रकृति का जादू हो। जहाँ भी प्राकृतिक दृश्य आते हैं उनका वर्णन कवि बड़े उल्लास के साथ करता है। नरेश मेहता की कविता में, उषा, धूप और किरन का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। 'दूसरा सप्तक' में नरेश मेहता की कविताएँ संकलित हैं। 'संशय की एक रात' (1962) उनकी प्रसिद्ध काव्य रचना है। समय देवता'उनकी लंबी कविता है। उनके प्रमुख संग्रह हैं 'वन पाखी ! सुनो!!' (1957), 'बोलने दो चीड़ को' 'मेरा समर्पित एकांत' (1962)।

शमशेर और मुक्तिबोध दोनों का संबंध प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता तीनों से रहा है। इन तीनों कवियों में यद्यपि प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति काफी मुखर रही है। परन्तु वैचारिक दृष्टि से इन्हें प्रयोगवादी नहीं कहा जा सकता।

शमशेर बहादुर सिंह यद्यपि वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि हैं, परन्तु उनका कवि सौन्दर्यवादी है। शमशेर में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। उनकी कविता में सूक्ष्म और संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। उनका झुकाव अमूर्तन की ओर अधिक है यही कारण है कि कहीं–कहीं उनकी कविता दुरूह भी हो जाती है। लेकिन परिष्कृत बिंब, उत्कृष्ट शिल्प और आत्मीयता का भाव उनकी कविताओं को असामान्य भी बनाता है। शमशेर भी ''दूसरा सप्तक'' के कवि हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रमुख काव्य–संग्रह हैंः कुछ कविताएँ (1959), कुछ और कविताएँ (1961), चुका भी हूँ नहीं मैं (1975)।

मुक्तिबोध आत्म संघर्ष के कवि हैं। उनकी कविताएँ उनके आत्म संघर्ष का ही प्रतिफलन हैं, लेकिन आत्म संघर्ष बाहरी संघर्ष से उत्प्रेरित हैं। इसके पीछे वैयक्तिक आकांक्षा या अहम् का भाव नहीं है। मुक्तिबोध वस्तुतः तीखे सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। सामाजिक संघर्ष ही उनके आत्म संघर्ष का कारण है। सामाजिक यथार्थ उनकी कविताओं में 'अंधेरे' के रूप में मौजूद है। अंधेरा उनकी कविताओं में बार–बार भिन्न–भिन्न रूपों में आता है। यथार्थ उनके यहाँ भयावह खबर की तरह है। उनकी कविताएँ प्रायः बहुत लंबी होती हैं जिनमें सामाजिक यथार्थ और आत्म संघर्ष मिलकर ऐसी फैंटसी का निर्माण करती हैं जो हिंदी कविता की अमूल्य निधि है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं – 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' और 'भूरी–भूरी खाक धूल'।

बोध प्रश्न

4) प्रयोगवाद की काव्य भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं में से जो सही न हो उन पर (×) का चिह्न लगाइए।

   क) कोमलता और सुकुमारता प्रयोगवाद की काव्य भाषा की प्रमुख पहचान है। ( )

   ख) प्रयोगवाद की काव्य भाषा बोलचाल के अधिक नजदीक है। ( )

   ग) प्रयोगवाद की भाषा छायावादी काव्य भाषा के अधिक नजदीक है। ( )

   घ) प्रयोगवाद की भाषा में आलंकारिता की प्रवृत्ति कम है। ( )

5) निम्नलिखित कथन में से जो सही हो उसके आगे (✓) और जो गलत हो उसके आगे (×) का चिह्न लगाइए।

क) प्रयोगवाद की कविता मुक्त छंद की कविता है। ( )

ख) प्रयोगवाद में प्रतीक लाक्षणिक वक्रता तक सीमित है। ( )

ग) अज्ञेय की कविताओं में सामाजिक संघर्ष की अभिव्यक्ति अधिक हुई हैं। ( )

घ) मुक्तिबोध आत्म संघर्ष के कवि हैं। ( )

ङ) नरेश मेहता की कविता में प्रकृति पूर्णतः अनुपस्थित है। ( )

अभ्यास

2) अज्ञेय और मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताओं की निम्नलिखित आधार पर तुलना कीजिए।

क) विचारधारा की दृष्टि से

....

....

....

ख) सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से

....

....

....

ग) बिंब की दृष्टि से

....

....

....

7.6 नयी कविता की पृष्ठभूमि

नयी कविता का आरंभ कब से हुआ, इसके बारे में स्वयं नयी कविता के कवि भी आपस में सहमत नहीं है। कुछ कवि आलोचक प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग–अलग काव्यधारा मानते हैं, जबकि कुछ के अनुसार प्रयोगवाद का ही विकास नयी कविता के रूप में हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता की शुरूआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं जिसके प्रथम अंक का प्रकाशन सन् 1954 ई. में हुआ था। गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग–अलग कृत्रिम वर्गों में देखना असंगत मानते हैं। उनके अनुसार प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिकता की भिन्न स्टेज है। तीसरा सप्तक (1959) की भूमिका में अज्ञेय प्रयोगवाद या प्रयोगशीलता शब्दों की अपेक्षा नयी कविता शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित समझते हैं।

नयी कविता के उदय का विचार करने से पूर्व हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि 1947 में उत्पन्न काव्यधारा 1954–55 तक आते–आते विलुप्त क्यों होने लगी। हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद की धारा बहुत दूर तक न चल सकी। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा कि ''कुल मिलाकर प्रयोगवाद ने अधिक बल कविता के शिल्प विधान पर दिया था। अनुभूतियों के क्षेत्र में भी उसने कुछ नवीनता का संचरण किया। परन्तु समस्त जीवन के संबंध में उसका अपना कोई सुस्पष्ट दृष्टिकोण नहीं था। यह भी सही है कि प्रयोगवाद के लिए यह बहुत इष्ट न था। अंततः वह अनुभूतियों के चित्रण तथा शिल्प–विधान के क्षेत्र में एक प्रयोग ही था। अतः उसकी सार्थकता भी इसी रूप में है। प्रयोगवाद का हमारे इतिहास में स्थायी होना कुछ स्पृहणीय न था। इतने लंबे समय तक प्रयोग की स्थिति रहना प्रवृत्तिगत अस्थिरता का द्योतक होता''।

7.6.1 प्रयोगवाद और नयी कविता

प्रयोगवाद और नयी कविता का संबंध जटिल नहीं है। प्रगतिवाद के उत्तरकाल में जब काव्यक्षेत्र में ऐसी प्रवृत्तियाँ पनपने लगी जो काव्य की सामाजिक भूमि की बजाए व्यक्ति की स्वानुभूति पर अधिक बल देती थी, जो काव्य में वस्तु–पक्ष की बजाए रूप–पक्ष पर बल देती थी, जो काव्य की किसी बनी बनाई शैली का अनुसरण करने की बजाए नये प्रयोगों पर बल देती थी ऐसी स्थिति में प्रगतिवाद के बढ़ते अंतर्विरोधों के साथ ही इन प्रवृत्तियों ने अपना प्रभुत्व बढ़ना शुरू किया। ये ही प्रवृत्तियाँ बाद में प्रयोगवाद के रूप में जानी जाने लगी। आरंभ में प्रयोग की चर्चा का अर्थ प्रगतिवाद का विरोध नहीं था। इसीलिए 'तार सप्तक' के प्रकाशन से लेकर 'प्रतीक' के प्रकाशन के बीच के दौर में प्रयोगों की चर्चा होते हुए भी इसने वाद का रूप–ग्रहण नहीं किया था लेकिन जब अज्ञेय ने 'प्रतीक' का प्रकाशन आरंभ किया और उसके माध्यम से प्रगतिवाद का विरोध किया जाने लगा, तब प्रयोगवाद की चर्चा प्रयोगवाद की विरोधी काव्य–प्रवृत्ति के रूप में होने लगी। अज्ञेय आरंभ से ही प्रयोगवाद शब्द को उचित नहीं मानते थे। उन्होंने 1952 में इलाहाबाद से प्रसारित रेडियो वार्ता में प्रथम बार 'नयी कविता' शब्द का प्रयोग किया। 1954 में 'नयी कविता' (संपादकः जगदीश गुप्त) पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तो 'नयी कविता' शब्द प्रचलित हो गया। 'नयी कविता' आंदोलन के सूत्रधार कवियों–आलोचकों (जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा) ने अपनी काव्य–सृजन की परंपरा का संबंध प्रयोगवाद तथा अज्ञेय से जोड़ा तथा मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का विरोध किया।

''नयी कवितावादी'' आरंभ में अपनी कविता को प्रयोगवाद और अज्ञेय से जोड़ने में गर्व महसूस करते थे, लेकिन धीरे–धीरे वे अपने काव्य को प्रयोगवाद के साथ जोड़ते हुए भी उससे भिन्न व विशिष्ट बताने लगे तथा बाद में अपनी विशिष्टता पर अधिक बल देने लगे।

7.6.2 नयी कविताकालीन परिस्थितियाँ

हमने प्रयोगवादकालीन परिस्थितियों की चर्चा करते हुए लिखा था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी शिविर और समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों और बुद्धिजीवियों पर भी पड़ रहा था। इन दोनों शिविरों के बीच बढ़ते तनाव ने शीतयुद्ध को जन्म दिया। इस दौर में ऐसे सांस्कृतिक और साहित्यिक संगठनों ने जन्म लिया जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा और समाजवादी देशों का दृढ़तापूर्वक

विरोध किया। यह कहा गया कि मार्क्सवाद हर तरह की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी देशों में न जनता को न ही बुद्धिजीवियों–लेखकों को स्वतंत्रता प्राप्त है। यह भी कहा गया कि पूंजीवाद और समाजवाद तथा वाम और दक्षिण जैसे भेद आज अनावश्यक है। व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नये लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। प्रगतिवादी लेखकों ने तो स्वतंत्रता को अधूरा बताया ही था, नयी कवितावादी भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति से असंतुष्ट थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य सत्ता जिन वर्गों के हाथ में आई उससे जनता की समस्याओं का समाधान संभव नहीं था। स्वतंत्र भारत में जनता का असंतोष बढ़ा, देश में आर्थिक विषमता बढ़ी और बेरोजगारी पनपी। असंतुलित विकास हुआ तथा राष्ट्रीय एकता और बाहरी दबावों की समस्याओं का विस्तार हुआ। इस राष्ट्रीय स्थिति ने मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों को निराश और कुंठित किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले शीतयुद्ध ने उन्हें दिग्भ्रमित भी किया। नयी कविता का आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

7.6.3 नयी कविता का अभिप्राय

यह विवाद का विषय रहा है कि नयी कविता नाम से जानी जाने वाली कविता किन अर्थों में नयी है और इस काल की कविता को ही नयी कविता कहना कहाँ तक उचित है। जबकि क्या यह सच नहीं है कि छायावादी कविता भी अपने से पूर्ववर्ती काव्यरूपों से नयी ही थी? अगर नयी कविता का तात्पर्य यह है कि वह पूरी तरह से नयी है और उसमें अपने पूर्ववर्ती काव्यरूपों की कोई छाया नहीं है तो यह कहना भी सही नहीं है। नयी कविता पर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद ही नहीं बल्कि छायावाद के प्रभाव को भी स्वीकारा गया है।

डॉ. जगदीश गुप्त इस बात पर बल देते हैं कि 'कविता में नवीनता की उत्पत्ति सच्ची कविता लिखने की आकांक्षा से ही होती है'। नयी कविता को परिभाषित करते हुए अनुभूति की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया। अज्ञेय ने अनुभूति की विशिष्टता को महत्वपूर्ण माना तो गिरिजाकुमार माथुर ने अनुभूति की साधारणता को ही विशिष्टता माना है। डॉ. जगदीश गुप्त ने नयी कविता को 'अपने युग की नयी वास्तविकता के अनुरूप' बताया। धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। नयी कविता में व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना भी प्रबल रही। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता की अपनी कोई विशेष दार्शनिक धारा या विचारधारा नहीं रही। उनके अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की पर्सनल सिचुएशन की कविता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नयी कविता की कोई सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत करना असंभव है। यहाँ तक सही है कि संपूर्ण नयी कविता का संबंध अपने युग के यथार्थ से है। लेकिन इस यथार्थ को व्यक्त करने वाली भिन्न–भिन्न दृष्टियाँ है। इनमें कई दृष्टियाँ एक दूसरे से नितांत विरोधी भी हैं। नयी कविता पर विचार करते हुए जहाँ एक ओर इस बात को ध्यान में रखना होगा कि उसका संबंध तत्कालीन यथार्थ से है वहीं उसमें अंतर्निहित विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को भी ध्यान में रखना होगा।

7.7 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

जैसा कि कहा जा चुका है नयी कविता पर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव था। इस दौर में पश्चिम में अस्तित्ववाद जैसे नये दर्शन की लोकप्रियता बढ़ी। आधुनिकतावाद की भी व्यापक चर्चा होने लगी। नयी कविता के रचनाकारों पर इन दोनों विचारधाराओं का प्रभाव भी पड़ा। युद्धों की विभीषिका ने यूरोप के जन–जीवन को पूरी तरह से झकझोर दिया। मृत्यु और विनाश का भय जीवन की वास्तविकता बन गया तो इसके कारण लोग भोगवाद की ओर भी प्रवृत्त हुए। विश्व बाजार की होड़ और युद्धों की जघन्यता के बीच व्यक्ति को यह लगने लगा कि सत्य केवल मृत्यु है शेष सब कुछ मिथ्या है। आस्था, मूल्य, समाज, आदर्श, भविष्य सब मिथ्या है। अस्तित्ववाद की सोच का असर नयी कविता के रचनाकारों पर भी दिखाई देता है।

आधुनिकतावाद का संबंध पूँजीवादी विकास से है। पूँजीवादी विकास के साथ उभरे नये जीवन मूल्यों एवं नयी जीवन–पद्धति को आधुनिकतावाद की संज्ञा दी जा सकती है। आधुनिकता ने जहाँ एक ओर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मानव मूल्य दिए, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक सभ्यता और मशीनीकरण ने कई नयी समस्याएँ भी उत्पन्न कर दी। मशीनों के सामने व्यक्ति अपने को निरुपाय समझने लगा। शहरीकरण और भीड़-भाड़ ने मनुष्य को अकेला कर दिया। उपर्युक्त परिस्थितियों और सोच ने नयी कविता की विषयवस्तु को निर्धारित करने में अहम् भूमिका निभाई।

नयी कविता पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव रहा है। नयी कविता में वस्तुतः दो तरह की धारा रही है एक धारा जो अस्तित्ववाद–आधुनिकतावाद से प्रभावित थी, दूसरी धारा जो मार्क्सवाद से प्रभावित थी। कई नये कवि ऐसे भी थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से कोई पक्ष ग्रहण नहीं किया।

7.7.1 व्यक्ति–स्वातंत्र्य

व्यक्ति–स्वातंत्र्य नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति कही जा सकती है। नयी कविता आंदोलन के दौरान नये कवियों ने नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का नारा दिया। यह नया मनुष्य कैसा हो, इसको लेकर उनमें तीव्र मतभेद था। कोई इसे लघु मानव (लक्ष्मीकांत वर्मा) की संज्ञा दे रहा था तो कोई इसे सहज मानव की (विजयदेव नारायण साही)। कोई इसे स्वतंत्रता का असली प्रवक्ता बता रहा था तो कोई इसे भीड़ से घिरा अकेला और एकाकी। लेकिन यह मानव मध्यवर्ग का ही प्रतिनिधि था। यह मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने को व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता का प्रबल पक्षधर मानता था। समाज की मृत मान्यताओं और रूढ़ियों से घिरा यह व्यक्ति अपने को हीन, दीन, अकेला, कुंठित, पीड़ित और उपेक्षित समझता था। यह 'भीड़ से घिरा' परन्तु 'अपने निजी विवेक के प्रति अत्यधिक सजग' था। नयी कविता में इसी व्यक्ति–विशेष की आशाओं–निराशाओं, आस्थाओं–अनास्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्वतंत्र इयत्ता का प्रतिपादन सभी कवियों ने एक ढंग से नहीं किया है। लक्ष्मीकांत वर्मा के यहाँ व्यक्ति की एकांतप्रियता के प्रति विशेष आग्रह है। व्यक्ति की लघुता के महत्व का प्रतिपादन भी उन्होंने अपनी कविताओं में किया है। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार वैयक्तिकता और सामूहिकता दोनों ही असत्य और छल है। इसीलिए सामूहिकता के छल में व्यक्ति अपने स्वंतत्र व्यक्तित्व को खोए, इससे कहीं बेहतर है कि वह अपनी वैयक्तिकता की रक्षा करे। डॉ. भारती अपने काव्य–नायक को पराजित,

उत्पीड़ित, टूटा हुआ, जर्जर, कुंठित और त्रासदी झेलते हुए एक अकेले शहीद के रूप में पेश करते हैं।

नयी कविता में भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद भी प्रमुख रहा है। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि कवियों ने भीड़ बनाम व्यक्ति के द्वंद्व को कविता में व्यक्त किया है। वे भीड़ के मुकाबले में खड़े व्यक्ति को उससे अलग और लघु भी मानते हैं। जनता को भीड़ समझना और व्यक्ति की कथित लघुता को महिमामंडित करना मध्यवर्गीय व्यक्ति की व्यक्तिवादी सोच का ही तार्किक परिणाम है। परन्तु नयी कविता के दौर में ही जन के प्रति पूर्ण आस्था की अभिव्यक्ति हम मुक्तिबोध की कविता में देख सकते हैं। रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह की कविता में जनता के प्रति वैसा अनादर व्यक्त नहीं हुआ है जैसा इन कई अन्य नये कवियों में देखते हैं।

7.7.2 आस्था और अनास्था

नयी कविता के दौरान आस्था का प्रश्न भी महत्वपूर्ण रहा। नये कवियों का कहना था कि हमारा काव्य अगर अनास्थावादी लगता है तो इसलिए कि आज की सच्चाई यही है। उनके अनुसार, नयी कविता वादों, विचारधाराओं, रूढ़ियों, सामूहिकों निर्णयों पर झूठी आस्था का विरोध करती है। वह नियतिवादी भविष्य के भ्रम जालों और आशा के झूठे जंजालों पर विश्वास नहीं करती। नयी कविता व्यक्ति के अपने विवेक पर आस्था व्यक्त करती है, क्योंकि व्यक्ति का विवेक ही उसे सही दिशा दे सकता है न कि बाह्य सत्य। धर्मवीर भारती निजी विवेक के अतिरिक्त आस्था का और कोई बाह्य आधार नहीं स्वीकारते। 'अंधायुग' का प्रत्येक पात्र आस्थाविहीन है। किसी को भी भविष्य पर भरोसा नही हैं। मनुष्य का भविष्य उन्हें मृत नजर आता है, केवल आत्महत्या ही उन्हें दर्शन, धर्म, कला, संस्कृति तथा शासन में व्यक्त होती नजर आती है :

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में,
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
शासन–व्यवस्था में
आत्मघात होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।

(अंधायुग)

कुँवरनारायण ने 'आत्मजयी' में भी आस्था–अनास्था का प्रश्न उठाया है। ''आत्मजयी'' में उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष को जिस परिणति तक पहुँचाया है उससे यही सिद्ध होता है कि वह व्यक्ति के बाह्य संघर्ष को आत्मचेतन स्तर पर हल कर लेना चाहते हैं। नये कवियों में सभी इतने आस्थाविहीन नहीं है। मुक्तिबोध की कविता इस बात का प्रमाण है। अज्ञेय के यहाँ भी परंपरा के प्रति एक आदर भाव मिलता है जिसे हम 'असाध्य–वीणा' में देख सकते हैं।

7.7.3 औद्योगिक सभ्यता

पूँजीवादी विकास में तकनीकी प्रगति का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसने बड़े उद्योगों की स्थापना को संभव बनाया, जिसके कारण बड़े–बड़े नगर बसे। पारिवारिक ढाँचे, सामाजिक संबंधों, जीवन मूल्यों में ऐसे परिवर्तन हुए जिसकी कल्पना इससे पहले के मनुष्य ने नहीं की थी। ये परिवर्तन सकारात्मक भी थे और नकारात्मक भी। बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय

बनाया, स्वार्थी और लोभी भी बनाया। इसीलिए कवियों ने औद्योगिक सभ्यता की आलोचना भी की। अज्ञेय की ऐसी कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यंत्र व्यक्ति को केवल सुविधाएँ ही नहीं देता, वह व्यक्ति से उसकी संवेदन–शक्ति भी छीन लेता है। कुंवरनारायण के शब्दों में 'पहियों और पंखों वाली इस बेसिर पैर की सभ्यता में' यह पता लगाना मुश्किल है कि यहाँ आदमी मशीन को चला रहा है या मशीन आदमी को। और तब ऐसे में मनुष्य की जो तस्वीर उभरेगी वह कुछ–कुछ ऐसी होगी :

अपने ही हथियारों से घबराया मानव
पत्थर का देव और लोहे का दानव
यह युग
अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य
अपने अतीत को दुहराता अंधा भविष्य
शहरों का कूड़ा झोंपड़ियों में फैलाया
अपनी जरूरतों को कोड़ों से पिटवाया
इंसान। मगर बेजान। मकानों–सा ढहाता
अपने से दूर पास बस्ती के रहता
सभ्यता। लगी नाखूनों पर पालिश जैसे
हम ठाठ फकीरी। बिकता जो पैसे–पैसे

(परिवेश : हम–तुम)

नगरीय जीवन की आलोचना अज्ञेय के अतिरिक्त लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, विपिन कुमार अग्रवाल, सर्वेश्वर की कविताओं में भी है। साही के यहाँ शहरी जीवन की आलोचना संवेदनात्मक धरातल पर की गई है। इन कवियों की कविताओं में जीवन के प्रति जिस ऊब, खीझ, निराशा और कुंठा की अभिव्यक्ति हुई है उसके मूल में शहरी जीवन की विषमताएँ हैं। मुक्तिबोध ने भी शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर किया है, लेकिन इसके लिए वे विज्ञान और मशीन को नहीं बल्कि ''शोषण की सभ्यता के नियमों'' को दोषी ठहराते हैं, जिसके 'सियाह चक्रव्यूह' में मनुष्य के प्राण फंसे हुए हैं।

7.7.4 अनुभूतिपरकता

नयी कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया है। अज्ञेय यह मानते हैं कि संसार की अनुभूतियाँ और घटनाएँ साहित्यकार के लिए मिट्टी हैं, जिनसे वह प्रतिमा बनाता है। लेकिन नये कवि अनुभूति की विशिष्टता पर विशेष बल देते हैं। इन कवियों के लिए अनुभूति की विशिष्टता का अर्थ किसी नवीन अनुभव से नहीं बल्कि अनुभव को अभिव्यक्त करने के नये अंदाज से है। इसे ही वे सौन्दर्यानुभूति भी कहते हैं।

किसी कवि का सौन्दर्य बोध दूसरे कवि से किस रूप में भिन्न है इसका पता उन कवियों के विषय चयन से लेकर भाववस्तु की अभिव्यक्ति के उपकरणों के चयन तक से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अज्ञेय मूलतः प्रकृति सौन्दर्य के कवि हैं और आरंभ से ही जनरव से दूर प्रकृति के वैविध्यमय रूपों के सौन्दर्य को विभिन्न कोणों, रूपों एवं रंगों में बांधते रहे हैं। शमशेर एवं केदारनाथ सिंह भी प्रकृति और प्रेम के कवि हैं, लेकिन उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं में जन–जीवन का निषेध नहीं है। इन तीनों कवियों में यद्यपि सामाजिक जीवन के अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति प्रधान है। सामाजिक जीवन को प्रधानता से अभिव्यक्त करने वाले कवियों के भिन्न जीवन–दर्शन के कारण उनकी कविताओं में भी भिन्नता नजर आती है। धर्मवीर भारती और रघुवीर सहाय के जीवन

दर्शन की भिन्नता ने उनके काव्य के स्वरूप को दूर तक प्रभावित किया है, यही अंतर मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय में देखा जा सकता है। कहने का अर्थ यही है कि प्रत्येक कवि के सौन्दर्य–बोध के अंतर के मूल में उन कवियों की जीवन दृष्टि, सौन्दर्याभिरुचि, सामाजिक यथार्थ से संपृक्ति, कलात्मक क्षमता आदि का हाथ रहता है।

नयी कविता में क्षण बोध की चर्चा भी विशेष रूप से हुई है। काल एक अनंत प्रवाह है और क्षण उसकी लघुतम इकाई। अज्ञेय क्षण को काल का प्रतिनिधि मानते हैं। 'एक क्षण–क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णता।' नये कवि मानते हैं कि व्यक्ति क्षण का ही अनुभव करता है और वही विशिष्ट अनुभव है। एक क्षणिक अनुभव भी महत्वपूर्ण हो सकता है। व्यापक यथार्थ से क्षण पर अधिक बल देने के कारण नये कवि इतिहास का विरोध भी करते हैं। वे इतिहास को बोझ की तरह मानते हैं।

7.7.5 प्रकृति–प्रेम

प्रकृति संबंधी कविताएँ प्रायः सभी नये कवियों ने लिखी हैं लेकिन प्रकृति के संबंध में इन कवियों का दृष्टिकोण छायावाद से भिन्न है। छायावादी कवि प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ था – एक नये भावबोध के साथ। यह भावबोध था – स्वतंत्रता। जिस समाज में छायावादी कवि रहता था, वहाँ बंधन ही बंधन थे लेकिन स्वयं उसके हृदय में स्वतंत्रता का बीजारोपण हो चुका था। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की प्रतीति उसे समाज में तो नहीं प्रकृति में होती थी। इसलिए प्रकृति की उन्मुक्तता में उसे अपने हृदय की उन्मुक्तता के दर्शन होते थे। लेकिन नये कवि के सम्मुख दासता और बंधन की ऐसी जकड़न नहीं थी। देश स्वतंत्र हो चुका था, पुराने मूल्य टूट रहे थे। देश का तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था। लेकिन इस औद्योगीकरण ने प्रकृति के उन्मुख सौन्दर्य को मानव–जीवन से दूर कर दिया था। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नये कवियों ने भिन्न–भिन्न रूपों में ग्रहण किया। अज्ञेय के प्रकृति लगाव की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। लेकिन उनके काव्य में प्रकृति चित्रण समाज निरपेक्ष अधिक है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, कुंवरनारायण, हरिनारायण व्यास आदि कवियों ने भी प्रकृति चित्रण के लिए सामान्य जीवन के अनुभव जगत से बिंब ग्रहण किये हैं। श्री साही की प्रवृत्ति भी शहरी जीवन से जुड़े प्रकृति रूप की ओर है लेकिन सर्वेश्वर के प्रकृति गीतों का गहरा संबंध ग्रामीण जीवन से है।

रघुवीर सहाय ने अपनी प्रकृति की कविताओं में केवल प्रकृति के बिंब ही प्रस्तुत नहीं किया हैं बल्कि वह अपने मन पर प्रकृति के किसी रूप विशेष के प्रभाव को भी व्यक्त किया है। 'पानी के संस्मरण' कविता में उन्होंने विभिन्न काल खंडों में पानी के भिन्न–भिन्न स्मृति बिंबों को प्रस्तुत किया है।

> कौंधः दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
> दुपहरः घना ताल : ऊपर झुकी आम की डाल
> बयार : खिड़की पर खड़े, आ गयी फुहार
> रात : उजली रेती के पार, सहसा दिखी शांत नदी गहरी
> मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।

(सीढ़ियों पर धूप में)

केदारनाथ सिंह के यहाँ भी प्रकृति का कोई एक दृश्य–चित्र नहीं कौंधता बल्कि कई दृश्य–चित्र एक के बाद एक मानस पटल पर उतरते चले जाते हैं जिन्हें कवि काव्यबद्ध करता है। केदारनाथ सिंह की प्रकृति कविताओं में कृषक चेतना के दर्शन होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह और मुक्तिबोध के प्रकृति काव्य के संबंध में आप पहले पढ़ चुके हैं।

6) निम्नलिखित प्रश्नों के दिए गए उत्तरों में से जो सही उत्तर हों, उन को कोष्ठक में लिखिए :

i) नयी कविता का आरंभ

क) ''तार सप्तक'' से माना जाता है।

ख) ''प्रतीक'' के प्रकाशन से माना जाता है।

ग) ''नयी कविता'' के प्रकाशन से माना जाता है।

घ) 1947 से माना जाता है। ( )

ii) नयी कविता पर

क) स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय स्थितियों का प्रभाव पड़ा।

ख) शीतयुद्ध का प्रभाव पड़ा।

ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा।

घ) उपर्युक्त तीनों का प्रभाव पड़ा। ( )

7) निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत, बताइए।

क) नयी कविता व्यक्ति–स्वातंत्र्य की पक्षधर कविता है। ( )

ख) नयी कविता में क्षण के अनुभव को महत्वपूर्ण माना गया है। ( )

ग) अज्ञेय की कविता में प्रकृति समाज सापेक्ष रूप में व्यक्त हुई है। ( )

घ) नये कवियों ने औद्योगिक सभ्यता का विरोध किया है। ( )

अभ्यास

3) नयी कविता में प्रकृति–चित्रण की विशेषताओं का प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

....

7.8 नयी कविता की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ

नयी कविता आंदोलन छायावादी और प्रगतिशील आंदोलनों से भिन्न था। जैसा कि डॉ. नामवर सिंह का मानना है, छायावाद के सभी कवि एक ही तरह की ''व्यापक

भावभूमि' पर तथा प्रगतिवादी एक ही तरह की 'व्यापक विचारभूमि' पर अवस्थित थे, लेकिन नयी कविता के बारे में ऐसी नहीं कहा जा सकता। विचारों और अनुभूतियों के स्तर पर दो भिन्न ध्रुवों पर रहने वाले कवि भी नयी कविता आंदोलन में शरीक थे। लेकिन काव्य के रूप और शिल्प की दृष्टि से उनमें ऐसा ध्रुवीकरण नहीं था। नये कवि काव्य की प्रचलित शैलियों और रूढ़ माध्यमों में परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन की यह आकांक्षा, नये जीवन–मूल्यों और जीवन स्थितियों से जुड़ी थी। इसने नयी कविता को नये शिल्प और नयी भाषा की खोज की ओर प्रवृत्त किया।

7.8.1 काव्य–भाषा

जगदीश गुप्त ने खड़ी बोली की विकास परंपरा पर विचार करते हुए नयी कविता के भाषागत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार, खड़ी बोली का विकास अन्य भाषाओं के अनुकरण द्वारा हुआ। छायावाद युग में भाषा में सृजनशीलता का प्रथम बार सक्रिय विकास हुआ। उत्तर छायावादी गीतकार खड़ी बोली को बोलचाल के निकट लाए, प्रगतिवाद ने उसे गेयता के रोमांटिक वातावरण से निकालकर सहसा सड़कों और पगडंडियों पर चलने को मजबूर किया। प्रयोगवाद ने शब्द प्रयोग की विविध चेष्टाओं द्वारा उसकी अर्थवत्ता को संवर्धित किया था। नयी कविता ने उत्तराधिकार में प्राप्त समस्त प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौन्दर्यबोध विकसित किया जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधक तत्व बन गया। जगदीश गुप्त का मानना है कि नयी कविता में गद्य और पद्य की भाषा इतनी अधिक निकट आ गई है कि दोनों की विभाजक रेखा कहीं–कहीं सर्वथा विलुप्त होती हुई दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में, नयी कविता बोलचाल की भाषा के निकट है। नयी कविता के प्रायः सभी कवियों ने इसे स्वीकार किया है।

नयी कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा के नजदीक मानते हुए उसे सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया के संबंध में उनमें मतभेद है। अज्ञेय अपने पूर्ववर्ती भाषा प्रयोगों से संतुष्ट नहीं थे और उनमें सर्जनशीलता की संभावना नजर नहीं आई। इसीलिए वे कहते हैं :

ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

इससे स्पष्ट है कि अज्ञेय नयी काव्यभाषा तलाश करना चाहते हैं। अज्ञेय तद्‌भव शब्दावली का अधिक प्रयोग करते हैं। उनकी कई श्रेष्ठ रचनाओं में इसे देखा जा सकता है। बास, सौंधी, मिट्‌टी, असाढ़, बासन, हिया जैसे प्रयोग काफी मिलते हैं। अज्ञेय ने काव्यभाषा में मौन के महत्व को भी स्वीकार किया है। 'एक मौन ही है जो अब भी नयी कहानी कह सकता है'। मौन से तात्पर्य है जो कविता में नहीं कहा गया परन्तु जो सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

नये कवियों के बोलचाल की भाषा एक–सी नहीं है। बोलचाल की भाषा का जो रूप भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में है वह रघुवीर सहाय के यहाँ नहीं है। भवानी प्रसाद मिश्र का आदर्श है – 'जिस तरह हम बोलते है।/उस तरह तू लिख'। सरल और सहज भाषा लिखना आसान नहीं है। नये कवियों की काव्य भाषा मूलतः उनकी काव्य–प्रवृत्ति से निर्धारित हुई है। काव्य–प्रवृत्ति में बदलाव के साथ भाषा में भी बदलाव आया है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता पर यह बात विशेष रूप से लागू

होती है। नयी कविता में बिंब निर्माण की प्रवृत्ति के साथ–साथ विचार–वक्तव्यों की प्रवृत्ति भी रही है। इन दोनों में भाषा का रूप अलग मिलता है। बिंब निर्माण में भाषा का अधिक सर्जनात्मक रूप मिलता है। विचार वक्तव्यों की दृष्टि से धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' की भाषा अधिक सर्जनात्मक है। शमशेर, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह की काव्यभाषा के रूप अलग–अलग हैं परन्तु उन्होंने भाषा का सर्जनात्मक इस्तेमाल किया है। रघुवीर सहाय की भाषा में निजता के साथ–साथ सरलता और सहजता है। केदारनाथ सिंह की काव्य–चेतना मूलतः गीतकार की है, साथ ही बिंबात्मकता की ओर अधिक झुकाव होने के कारण उनकी भाषा पारदर्शी दर्पण की तरह है।

7.8.2 छंद और लय

नयी कविता ने मुक्त छंद पर अधिक बल दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि नयी कविता में गद्यात्मकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि कविता में तुक या छंद हो या न हो लेकिन लय अवश्य होनी चाहिए। अगर लय, नहीं है तो कविता के गद्य होने की पूरी संभावना है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के अनुसार कविता की लय छंद की लय या शब्द की लय की तरह अनुशासित हो यह आवश्यक नहीं है। नये कवियों ने शब्द की लय की बजाय 'अर्थ की लय' को महत्वपूर्ण माना है। जगदीश गुप्त के अनुसार, 'जिस प्रकार ध्वनि अथवा शब्द खंडों का फिर–फिर कर आना क्रमिक रूप से लय के विभिन्न प्रकारों को जन्म देता है, उसी प्रकार अर्थ खंडों का क्रमिक, ग्रंथित आवर्तन–प्रत्यावर्तन अर्थ की लय के विविध रूपों की सृष्टि करता है।'

अर्थ की लय पर बल देने वाले रचनाकारों ने संगीत पक्ष की उपेक्षा की है तथा संगीत से मुक्त कविता को 'शुद्ध कविता' कहा है। लेकिन केदारनाथ सिंह की कविता संगीत तत्व से न केवल प्राणवान् हुई है बल्कि अर्थवान् भी। रघुवीर सहाय ने संगीत के महत्व को स्वीकारते हुए 'आत्महत्या के विरुद्ध' में कहा है कि संगीत आधुनिक संवेदना का एक आवश्यक अंग है।

7.8.3 प्रतीक और बिंब

नयी कविता में प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार प्रतीक स्वयं गौण होता है, मुख्यता उस 'दिशा' की होती है जिधर वह संकेत करता है। प्रतीक का एक पक्ष बराबर परंपराजीवी और समाज–स्वीकृति–सापेक्ष होता है। कोई भी नया प्रतीक अपने इच्छित की प्राप्ति के लिए एक ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह निरंतर प्रयुक्त होते–होते ही नियम, अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता है। नये कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी काफी किया है। मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुंवरनारायण, दुष्यंत कुमार, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि की कविताओं में वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण तथा अन्य पौराणिक ग्रंथों से प्रसंगों एवं पात्रों को प्रतीक रूप में लिया है। 'संशय की एक रात' काव्य में नरेश मेहता ने रामकथा का उपयोग युद्ध और शांति के संदर्भ में किया है, लेकिन इस प्रसंग की प्रस्तुति आधुनिक ही है। इसी तरह धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' के कृष्ण, युयुत्सु, अश्वत्थामा, आधुनिक मानव और मूल्यों के ही प्रतीक हैं। कुंवरनारायण के 'आत्मजयी' का नचिकेता आधुनिक आदर्शवादी मध्यवर्गीय व्यक्ति है। लेकिन इन सारे प्रतीकों को जिन कथानकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, वे पौराणिक होते हुए भी कवि का दृष्टिकोण, उसका परिप्रेक्ष्य तथा उसकी व्याख्या

पौराणिक नहीं है। नये कवियों ने प्रकृति और जीवन के विविध रूपों से भी प्रतीक ग्रहण किये हैं।

प्रतीकों का प्रयोग नये कवियों में उनकी प्रवृत्तियों के अनुकूल हुआ है। उदाहरण के लिए लघुमानव या मध्यवर्ग के व्यक्ति के महत्व को स्थापित करने के लिए उसकी 'लघुता की श्रेष्ठता' को स्थापित करने के लिए वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। गिरिजाकुमार माथुर के यहाँ व्यक्ति 'बौने' के रूप में है:

हम सब बौने हैं, मन से मस्तिष्क से भी
भावना से, चेतना से भी
बुद्धि से, विवेक से भी
क्योंकि हम जन हैं
साधारण हैं
हम नहीं हैं विशिष्ट

(बौनों की दुनिया, जो बंध नहीं सकता)

लक्ष्मीकांत वर्मा के यहाँ व्यक्ति 'भेड़' के रूप में है तो श्रीकांत वर्मा के यहाँ 'काकरोच' के रूप में है।

नये कवि बिंब को कितना महत्वपूर्ण मानते थे यह डॉ. केदार नाथ सिंह के वक्तव्य से स्पष्ट है जिन्होंने कहा था कि 'कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंब–विधान पर'। डॉ. केदारनाथ सिंह ने बिंब की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'बिंब वह शब्द–चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है'। नयी कविता में बिंब–विधान की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति–बिंबों का सुंदर प्रयोग मिलता है। उनके यहाँ प्रकृति–बिंब ऐन्द्रिक विलास के लिए नहीं बल्कि प्रायः किसी मानवीय अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जैसे 'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम' शीर्षक कविता में धूप के बिंब के माध्यम से बच्चे के प्रति पिता की ममत्व भावना को अभिव्यक्ति मिली हैं –

ओस भरे
कांपते गुलाब की टहनी पर
तितली के पंखों–सी सटी हुई
धूप!
एक नाम है हल्का सा
मेरे बेस्वाद खुल होंठों पर
तेरे लिए

(अभी बिल्कुल अभी)

काव्य बिंबों में मानव जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा आदि कवियों के काव्य में है लेकिन सभी कवियों में यथार्थ का स्वरूप और स्थितियाँ एक–सी नहीं हैं, यथार्थ का फलक इन कवियों के यहाँ व्यापक है, यद्यपि मध्यवर्ग के जीवन यथार्थ की प्रधानता भी है। कई कवियों ने बिंब को ऐन्द्रिक बोध की सीमाबद्धता से मुक्त कर उसे व्यापक अर्थवत्ता भी प्रदान की है। अंत में यह कहा जा सकता है कि नयी कविता को उत्कृष्ट रूप, देने में उनके नवीन और संश्लिष्ट काव्य–बिंबों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

7.9 नयी कविता के प्रमुख कवि

पचास के आसपास लेखन आरंभ करने वाले कवि नयी कविता आंदोलन से मुख्य रूप से जुड़े थे। परंतु अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल को भी नयी कविता आंदोलन के अंतर्गत शामिल किया जाता है। नयी कविता में सक्रिय कवियों में से सभी एक–से नहीं थे। अगर उनमें शमशेर, मुक्तिबोध, जैसे प्रतिबद्ध मार्क्सवादी कवि थे, तो अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता जैसे प्रयोगवादी कवि। लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, कुंवरनारायण, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा जैसे नये कवि भी थे जिन्होंने मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का दृढ़तापूर्वक विरोध किया तो केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय आदि पर शीतयुद्ध का प्रभाव औरों की अपेक्षा काफी कम था। आमतौर पर 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' के कवियों को नयी कविता में शामिल किया जाता है, लेकिन भवानीप्रसाद मिश्र ही हैं जिन पर नयी कविता की काव्यगत प्रवृत्तियों का सबसे कम प्रभाव है। हम यहाँ पर नयी कविता से जुड़े कुछ ऐसे प्रमुख कवियों की चर्चा करेंगे जिनकी हमने पूर्व की किसी धारा के अंतर्गत चर्चा नहीं की है।

धर्मवीर भारती नयी कविता के प्रमुख कवियों में से हैं। उन्होंने पद्य के अतिरिक्त गद्य भी लिखा है। काव्य में उनका गीतिनाट्य 'अंधायुग' सर्वाधिक चर्चित रचना है, जिसमें 'महाभारत' के अठारहवें दिन की घटनाओं को कथा का आधार बनाया गया है। 'कनुप्रिया' डॉ. भारती द्वारा रचित खंडकाव्य है जिसमें राधा–कृष्ण के प्रेम को कथा का आधार बनाया गया हैं। 'ठंडा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' उनके चर्चित काव्य संग्रह हैं। डॉ. भारती की कविताएँ 'दूसरा सप्तक' में भी संग्रहीत की गई हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार, 'भारती का रचनाकार एक अर्थ पाने के लिए बेचैन है और इसके लिए वह किसी नयी भावभूमि की खोज करना चाहता है'। भारती ने अपने काव्य द्वारा 'अंधे संशय, दासता, पराजय से मानव भविष्य को बचाने के लिए मानवीय संभावनाओं की खोज' की है। इसके लिए उन्होंने मिथकों की नयी व्याख्याएँ की हैं। धर्मवीर भारती ने नारी प्रेम और प्रकृति के संबंध में भी कविताएँ लिखी हैं। प्रकृति और नारी–प्रेम दोनों के प्रति उनकी दृष्टि रूमानी है। 'अंधायुग' को छोड़कर उनके प्रायः संपूर्ण काव्य की भाषा पर रूमानीपन का प्रभाव देखा जा सकता है।

कुंवरनारायण के काव्य को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'बृहत्तर जिज्ञासा का काव्य' कहा है। वस्तुतः कुंवरनारायण ने अपने काव्य में ऐसे सवालों को उठाया है जिनका संबंध मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व से है। उनका खंड काव्य 'आत्मजयी' इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें नचिकेता की कथा के माध्यम से जीवन–मृत्यु के शाश्वत प्रश्नों पर विचार किया गया है। कुंवरनारायण की प्रवृत्ति चिंतन की ओर अधिक है इसलिए उनकी काव्य–भाषा में भी हम यह बात देख सकते हैं। 'आत्मजयी' के अतिरिक्त उनके महत्वपूर्ण काव्य–संग्रह हैं : चक्रव्यूह (1956), परिवेशः हम–तुम (1961) इन दिनों (2002), वाजश्रवा के बहाने (2008)। कुंवरनारायण की कविताएँ 'तीसरा सप्तक' में भी संग्रहीत हैं।

रघुवीर सहाय नयी कविता के उन कवियों में हैं जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर सबसे अधिक पड़ा है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार ''रघुवीर सहाय का काव्य–संसार मामूली, अभावग्रस्त और उपेक्षित जिंदगी का संसार है''। उनकी

कविताओं में बदलाव की बड़ी–बड़ी बातें तो नहीं है परन्तु वे हमारे समकालीन यथार्थ को तल्खी और संवेदना के साथ पेश करते हैं। रघुवीर सहाय की कविताएँ संकीर्ण अर्थों में राजनीतिक नहीं हैं। किसी मत विशेष के प्रति आग्रही न होने के बावजूद उनकी कविताएँ प्रबल रूप से जनपक्षीय हैं। भाषा को भी उन्होंने नया तेवर दिया है। व्यंग्य, सपाटबयानी और बिंबात्मकता तीनों का उन्होंने सर्जनात्मक प्रयोग किया है। उनके प्रमुख संग्रह हैं : सीढ़ियों पर धूप में (1960) आत्महत्या के विरुद्ध (1967), हँसो हँसो जल्दी हँसो (1975) लोग भूल गये हैं (1982)। रघुवीर सहाय की कविताएँ 'दूसरा सप्तक' (1951) में भी संग्रहीत हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता यात्रा में कई मोड़ आए हैं। आरंभ में उन पर नयी कविता की व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, बाद में वे प्रगतिशील काव्यधारा की ओर झुके। सर्वेश्वर की कविताओं में एक प्रकार की निजता और आत्मीयता हमेशा रही है। वे सामाजिक जागरूकता के कवि हैं और सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पक्षों को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं परन्तु संवेदना और विचार दोनों दृष्टियों से उनकी कविताओं में वह गहराई नहीं आ पाई है जो हम रघुवीर सहाय की कविताओं में पाते हैं। सर्वेश्वर की कविताएँ अधिक सरल और संप्रेषणीय हैं, परन्तु यह सरलता कई बार सपाटता में भी बदल जाती है। सर्वेश्वर 'तीसरा सप्तक' (1959) के कवि हैं। उनकी विभिन्न रचनाओं का पहला संग्रह 'काठ की घटियाँ' (1959) है जिसमें भी कविताएँ संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त गर्म हवाएँ (1969), जंगल का दर्द (1976) आदि प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

केदारनाथ सिंह भी 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं। तीसरा सप्तक के अतिरिक्त उनकी कविताएँ ''अभी बिल्कुल अभी'' संग्रह में संकलित हैं जो 1960 में प्रकाशित हुआ था। इसके बीस साल बाद 'जमीन पक रही है' (1980) नामक नया काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार, 'केदारनाथ सिंह का काव्य संसार आज के भारतीय समाज के प्रति गहरी संवेदनात्मक उन्मुखता या लगाव प्रमाणित करने वाला संसार है। केदारनाथ सिंह भी उन कवियों में हैं जिन पर नयी कविता की नकारात्मक प्रकृतियों का प्रभाव लगभग न के बराबर रहा है। यही कारण है कि केदारनाथ सिंह आज भी उतने ही सक्रिय, सृजनशील और सार्थक नजर आते हैं। केदारनाथ सिंह की काव्य यात्रा धीरे–धीरे नयी कविता की व्यक्तिवादी धारा से मुक्त होती हुई जनपक्षीय प्रगतिशील धारा की ओर बढ़ती रही है। केदारनाथ सिंह बिंबों को काव्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानते रहे हैं। काव्य–भाषा की दृष्टि से भी उनकी कविता में ताजगी, सरलता, पारदर्शिता और सर्जनात्मकता के दर्शन होते हैं। उनके अन्य महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं: यहाँ से देखो, अकाल में सारस, 'तालस्ताय और साइकिल' तथा 'सृष्टि पर पहरा'।

श्रीकांत वर्मा का पहला काव्य संग्रह 'भटका मेघ' (1957) है जिसमें कवि का धरती और मनुष्य के प्रति लगाव व्यक्त हुआ है। लेकिन बाद के संग्रहों में इनमें व्यक्तिवादी प्रवृत्ति प्रबल होती गई है। मध्यवर्ग व्यक्ति की आत्मबद्धता, निराशा, विफलता, पराजय और अपराधबोध के भावों को श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं में अत्यंत तीखेपन से व्यक्त किया है। श्रीकांत वर्मा के काव्य में वक्तव्य और सपाटबयानी की प्रमुखता है जो नयी कविता के बाद के काव्य की प्रमुख विशेषता है। भटका मेघ के अतिरिक्त प्रमुख काव्य संग्रह हैं : 'दिनारंभ' (1967), 'माया–दर्पण' (1967), 'जलसाघर' (1973), 'मगध; (1984), 'गरुड़ किसने देखा' है (1987)।

8) नयी कविता की भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं में से जो सही हो उस पर (✓) का चिह्न लगाइए।

क) नयी कविता की भाषा बोलचाल की भाषा के आदर्श को स्वीकारती है। ( )

ख) नयी कविता की भाषा में रोमानियत का प्रभाव अधिक है। ( )

ग) नयी कविता की भाषा में बिंब–विधान पर अधिक बल दिया जाता है। ( )

घ) नयी कविता की भाषा छायावाद के अधिक नजदीक है। ( )

9) नयी कविता में प्रयुक्त पौराणिक प्रतीकों की विशेषता लगभग पाँच पंक्तियों में व्यक्त कीजिए।

....

....

....

....

....

....

10) नयी कविता के कुछ प्रमुख कवियों और कविता पुस्तकों के नाम नीचे दिए गए हैं। जो कविता पुस्तक जिस कवि द्वारा रचित हो उस पर उचित निशान लगाइए।

पुस्तक का नाम	कवि का नाम
1) आत्महत्या के विरुद्ध	क) केदारनाथ सिंह
2) भटका मेघ	ख) धर्मवीर भारती
3) अभी बिल्कुल अभी	ग) श्रीकांत वर्मा
4) चक्रव्यूह	घ) रघुवीर सहाय
5) अंधायुग	ड) कुंवरनारायण

अभ्यास

4) नयी कविता में व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को किस रूप में ग्रहण किया गया है। स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

7.10 सारांश

इस इकाई में आपने प्रयोगवाद और नयी कविता नामक काव्य–प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य की ये दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। प्रगतिवाद के बाद उभरी इन काव्य–प्रवृत्तियों का संबंध तत्कालीन परिस्थितियों से है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मध्यवर्ग में उभरी आकांक्षाओं, आशाओं और निराशाओं की अभिव्यक्ति ही इनकी विशिष्टता है। इन काव्य प्रवृत्तियों में दोनों काव्य धाराओं पर यद्यपि व्यक्तिवादी अंतर्मुखी काव्य–प्रवृत्तियों का प्रभाव अधिक है, लेकिन इन धाराओं में ऐसे कवि भी सक्रिय रहे हैं जिन पर न केवल व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव नहीं था, वरन् जिन्होंने इनका दृढ़तापूर्वक विरोध भी किया। शमशेर और मुक्तिबोध इनमें प्रमुख हैं।

प्रयोगवाद का आरंभ 'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन से और नयी कविता का आरंभ 'नयी कविता' (1954) पत्रिका के प्रकाशन से माना जाता है। प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा कविता के कलापक्ष पर विशेष बल दिया गया। किसी विचारधारा विशेष के प्रति पक्षधरता को अनावश्यक माना गया तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार किया गया। प्रयोगवादी कवि का कविता संसार यद्यपि मध्यवर्ग के जीवनानुभवों तक ही सीमित था, परन्तु उसने अपने सीमित अनुभवों को संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। प्रकृति के प्रति भी उसमें गहरा लगाव था। नारी के प्रति उसकी दृष्टि यथार्थपरक थी। प्रयोगवाद ने भाषा में बोलचाल को और छंदमुक्तता पर बल दिया। उसका आग्रह बिंबात्मकता की ओर था। प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, शमशेर, मुक्तिबोध, नरेश मेहता आदि प्रमुख प्रयोगवादी कवि हैं।

नयी कविता प्रयोगवाद का विकास है। यद्यपि नये कवियों ने काव्य को प्रयोग का विषय नहीं माना परन्तु व्यक्ति की स्वतंत्रता, वाद–विशेष का विरोध नयी कविता की भी विशेषता रही है। यह अवश्य है कि नयी कविता में प्रगतिशील धारा का भी प्रभाव रहा है और कई कवियों पर व्यक्तिवाद का प्रभाव रहा है। नयी कविता पर शीतयुद्धीय विचारधाराओं का विशेष असर था। इसी कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता, जनता को भीड़ समझना, इतिहास और परंपरा की बजाय क्षण के बोध को ही सार्थक समझना, नयी कविता की खास पहचान है। नयी कविता पर अस्तित्ववाद और आधुनिकतावाद का भी असर रहा है। शिल्प की दृष्टि से नयी कविता में बोलचाल की भाषा, बिंबात्मकता, पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग, अर्थ की लय आदि का विशेष आग्रह रहा है। नयी कविता में यद्यपि अनास्था, निराशा, विफलता, कुंठा, टूटन जैसे भावों की प्रधानता रही है परन्तु यह हमारे सामाजिक यथार्थ की ही मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियाँ थीं। मुक्तिबोध जैसे कवि कम थे, जिन्होंने इन मध्यवर्गीय भावनाओं पर आत्मसंघर्ष द्वारा विजय प्राप्त की। नयी कविता ने प्रमुख कवि और काव्य पुस्तकें दी हैं। अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध के अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, बालकृष्ण राव, कुंवरनारायण, केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, श्रीकांत वर्मा, हरिनारायण व्यास, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रमुख काव्य–प्रवृत्तियों और शिल्पगत विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं।

7.11 शब्दावली

कलावाद : कला, कला के लिए का सिद्धांत अर्थात् जो कलाकार यह मानता हो कि कला की रचना का अन्य कोई बाह्य उद्देश्य नहीं होता।

मानव–मूल्य : मानव मूल्य उन नैतिक मानों को कह सकते हैं जो मनुष्य के लिए आदर्श रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं।

व्यक्तिवाद : एक ऐसा सिद्धांत जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों और विश्वासों में पूर्ण स्वतंत्रता देने का समर्थन करता है। व्यक्तिवाद व्यक्ति के जीवन में राज्य और समाज के हस्तक्षेप का विरोधी होता है।

प्रकृतवाद : कला और साहित्य का एक ऐसा सिद्धांत जिसका मानना है कि लोगों को और वस्तुओं को ठीक उसी रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिस रूप में वे वास्तव में हैं न कि आदर्श या अप्रकृत रूप मे।

रोला और घनाक्षरी : छंद के प्रकार।

लाक्षणिक वक्रता : शब्द के सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ से उत्पन्न वक्रता जिसके कारण काव्य में विशेष अर्थ व्यक्त होता है।

अंतर्ग्रंथित : गुंथा हुआ।

स्पृहणीय : जिसकी इच्छा की जाये।

आधुनिकतावाद : आधुनिकतावाद से संबंधित सिद्धांत अर्थात् जो पूँजीवादी विकास से पूर्व के विचारों और मान्यताओं से भिन्न हो तथा आधुनिक जीवन से उत्पन्न हुए हों।

अस्तित्ववाद : यूरोप में उत्पन्न एक आधुनिक दार्शनिक मत जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य के अनुभव महत्वपूर्ण होते हैं और प्रत्येक अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है।

नियतिवाद : एक ऐसा दार्शनिक मत जिसके अनुसार व्यक्ति अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र नहीं है, उसके कार्य बाह्य स्थितियों से निर्धारित होते हैं।

आंतरिक अन्विति : आंतरिक संबद्धता। शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति का अर्थ है शब्द और अर्थ की ऐसी संबद्धता जो स्वाभाविक लगे।

अर्थ–खंडों का क्रमिक ग्रंथित आवर्तन–प्रत्यावर्तन : तात्पर्य यह है कि कविता में प्रयुक्त शब्दों से जो अर्थ व्यक्त होते हैं, उनमें क्रमबद्धता हो तथा उनमें आवर्तन के कारण अर्थ में लय उत्पन्न हो।

7.12 उपयोगी पुस्तकें

अज्ञेय (संपादक) : **तार सप्तक,** भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

अज्ञेय (संपादक) : **दूसरा सप्तक,** भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

अज्ञेय (संपादक) : **तीसरा सप्तक,** भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

नामवर सिंह : **आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ,** लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

नामवर सिंह : **कविता के नये प्रतिमान,** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. रामविलास शर्मा : **नयी कविता और अस्तित्ववाद,** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

अज्ञेय (संपादक) : **आधुनिक हिंदी साहित्य,** राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली।

नगेन्द्र (संपादक) : **हिंदी साहित्य का इतिहास,** नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

डॉ. रामदरश मिश्र : **हिंदी कविताः आधुनिक आयाम,** वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

7.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1)	क) ✓	ख) ×	ग) ×	घ) ✓	
2)	क) ×	ख) ✓	ग) ✓	घ) ✓	
3)	देखिए उपभाग 25.3.3				
4)	क) ×	ख) ✓	ग) ×	घ) ✓	
5)	क) ✓	ख) ×	ग) ×	घ) ✓	ड.) ×
6)	i) ग	ii) घ			
7)	क) ✓	ख) ✓	ग) ×	घ) ✓	
8)	क) ✓	ख) ×	ग) ✓	घ) ×	
9)	देखिए उपभाग 7.8.3				
10)	1) घ	2) ग	3) क	4) ड.	5) ख

अभ्यास

1) देखिए उपभाग 7.2.2

2) संकेत : क) अज्ञेय व्यक्तिवादी और मार्क्सवादी विरोधी जबकि मुक्तिबोध मार्क्सवादी।

   ख) अज्ञेय सामाजिक यथार्थ का चित्रण कम करते हैं जबकि मुक्तिबोध की कविताओं का यह केन्द्रिय विषय है।

   ग) अज्ञेय मुख्यतः प्रकृति से बिंब चुनते हैं जबकि मुक्तिबोध प्रकृति के साथ–साथ सामाजिक जीवन से भी बिंब चुनते हैं।

3) देखिए उपभाग 7.7.5

4) देखिए भाग 7.7

इकाई 8 समकालीन हिंदी काव्य

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 समकालीन हिंदी कविता की पृष्ठभूमि

8.3 समकालीन हिंदी कविता का प्रारंभ

8.4 सातवें दशक की काव्य प्रवृत्तियाँ

8.5 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- 8.5.1 व्यवस्था से विद्रोह
- 8.5.2 कविता में खबर
- 8.5.3 आत्म औचित्य की स्थापना
- 8.5.4 डायरी का अनुभव और कविता

8.6 स्त्री स्वर

8.7 दलित कविता का स्वर

8.8 समकालीन हिंदी काव्यधारा के प्रमुख कवि

8.9 समकालीन हिंदी कविता की भाषा

8.10 समकालीन हिंदी कविता में बिंब प्रतीक

8.11 काव्य-लय और छन्द–चेतना

8.12 सारांश

8.13 उपयोगी पुस्तकें

8.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- समकालीन हिंदी काव्य के प्रारंभ और पृष्ठभूमि की जानकारी दे सकेंगे;
- सातवें दशक के हिंदी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कर सकेंगे;
- समकालीन हिंदी काव्य में 'स्त्री स्वर' और 'दलित कविता का स्वर' की पहचान बता सकेंगे;
- समकालीन हिंदी काव्यधारा के प्रमुख कवियों का परिचय दे सकेंगे;
- समकालीन हिंदी कविता की भाषा पर चर्चा कर सकेंगे;
- समकालीन हिंदी कविता में बिम्ब–प्रतीक का विवेचन कर सकेंगे; और
- काव्य–लय और छन्द–चेतना के बारे में बता सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता आदि काव्यधारा के संबंध में विस्तार से जान लेने के बाद हमें समकालीन हिंदी कविता के बारे में जानकारी हासिल करनी है। इसके लिए सबसे पहले हमें उन परिस्थितियों के बारे में जानना होगा जिससे प्रेरित होकर सन् 1960 के बाद के रचनाकारों ने प्रयोगवाद और नई कविता के व्यक्तिवाद, एवं अकविता के नकारवाद से विमुख होकर नई रचना पद्धति अपनाई।

आजादी के बाद से सन् 1960 तक के तेरह वर्षों की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक विडंबनाओं, विसंगतियों की पृष्ठभूमि में सन् 1960 से 1967 तक के समय की कविताओं को, या कहें कि सातवें दशक की कविताओं को 'अकविता' अथवा 'साठोत्तरी कविता' कहा गया। 1969 से 1975 के दौरान इस काव्यधारा में नए ढंग का उभार आया, जिसमें विरोध, विद्रोह, संघर्ष का नारा अभिव्यक्त हुआ। धूमिल, जगूड़ी, सौमित्र मोहन, रामकमल चौधरी की कविताओं के उग्र तेवर इसका प्रमाण हैं। मगर उन्नीस सौ पचहत्तर के बाद की कविताओं के लिए आलोचना के शब्दकोश में अभी तक कोई नाम नहीं आया, जबकि इस अवधि में कविता का फलक बहुत अधिक विस्तृत हुआ है।

8.2 समकालीन हिंदी कविता की पृष्ठभूमि

समकालीन कविता के स्वरूप को ठीक से जान लेने के लिए इसके प्रारंभ और इसकी पृष्ठभूमि को जान लेना आवश्यक है। 'समकालीन' शब्द का अर्थ हुआ समय के साथ। अपने समय के साथ या आज के समय के साथ। वैसे तो प्रत्येक काल की रचना अपने समय के साथ होती है। उसमें उसी काल के जीवन का दुःख-सुख, राग-विराग, रहन-सहन, आहार-व्यवहार, मूल्य, संस्कार अभिव्यक्ति पाता है। ऐसा हुए बिना किसी भी साहित्य का न तो तात्कालिक महत्व होता है और न शाश्वत। इसी कारण हम प्रत्येक युग के साहित्य को समझने के लिए उस युग की पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक समझते हैं। इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।' इतिहास के तथ्य जहाँ मौन हो जाते हैं, वहाँ सहित्य में व्यक्त जीवन से हम उस युग की मानसिकता को समझने का प्रयास करते हैं।

समकालीन कविता की प्रारंभिक सीमा रेखा को निर्धारित करने के लिए हम 1975 ई. तक जा सकते हैं, जब देश में पहली बार आपातकाल की घोषणा हुई। इस घोषणा के साथ अभिव्यक्ति की आजादी को सीमित किया गया। आपातकाल की घोषणा के राजनीतिक पक्षों को यदि हम छोड़ दें, सिर्फ साहित्य और संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभाव की ही चर्चा करें तो कह सकते हैं कि हिंदी कविता में यहाँ से एक निर्णायक मोड़ आया। आक्रामकता से लैस हिंदी कविता इस घटना के बाद सहम गई। कविता में से बन्दूक, गोली, हड़ताल, जुलूस और संसद विरोध गायब हो गया। राजनीतिक घटनाओं पर टिप्पणी करने से कवि बचने लगे। अब वे सिर्फ डायरीनुमा अनुभव की कविताएँ लिखने लगे। 1977 में आपातकाल समाप्त हुआ। फिर से चुनाव हुए। विरोधी दलों की सरकार बनी। नागार्जुन ने कविता लिखी 'जनता वाले परेशान हैं सत्ता सुख चखें कैसे'। यह सरकार जल्दी ही टूट गई। 1980 में फिर आम चुनाव हुए और श्रीमती इंदिरा गाँधी फिर से प्रधान मंत्री बन गईं। अशोक बाजपेयी ने 1980 के वर्ष को 'कविता की वापसी' का वर्ष घोषित किया।

यहाँ से हिंदी कविता ने राजनीति से अपने आपको अलग करना शुरू किया। कवि चिड़िया, पेड़ और बच्चे जैसे विषयों पर कविताएँ लिखने लगे। राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से एक अलग निर्णायक मोड़ 1990 के बाद आया, जब सोवियत संघ का विघटन

हो गया। प्रगतिवाद की सर्वस्वीकृत धारा पर प्रश्न चिन्ह लगा और भविष्य का नक्शा धुंधला हो गया। इसी ऊहापोह में बीसवीं शताब्दी बीत गई और कविता एकाएक इक्कीसवीं शताब्दी में आ गई। शताब्दी के अंतिम बरस पर टिप्पणी करते हुए नीलेश रघुवंशी ने लिखा –

बैचेनी से भरी है बीसवीं सदी
हाहाकार मचा है उसके भीतर
पूरी पृथ्वी में किसी के पास
नहीं बचा इतना धीरज
हँसकर विदा करें उसे।

सहम रही है इक्कीसवीं सदी
पिछली सदी
धैर्य से पार नहीं कर पा रही तीन बरस
कैसे पार करेगी वह सौ बरस।

इस तरह समकालीन कविता का समय मोटे तौर पर 1980 से आज तक का माना जाता है। कुछ लोग इसे 1975 से भी मानते हैं। हालाँकि 1975 से 1980 तक का समय अनिश्चय, आशंका, अनिर्णय में ही बीत गया। आगे भविष्य की दशा क्या होगी? संसार क्या रूप लेगा? इसकी स्पष्ट समझ पर अब प्रश्न चिन्ह लग गया है। इस दौर में जो भी जैसी भी कविता लिखी गई – वह सब समकालीन कविता कही जाती है। इस कारण इसका अभी कोई नामकरण नहीं हुआ है। इसकी प्रवृत्तियाँ निश्चित नहीं हो पाई हैं, अतः अभी तक इसका एक कामचलाऊ नाम समकालीन कविता ही चल रहा है।

8.3 समकालीन हिंदी कविता का प्रारंभ

जैसा कि बताया जा चुका है 'समकालीन' शब्द का अर्थ हुआ 'समय के साथ'। हर समय की रचना अपने समय के भावबोध की वाहिका होती है। समकालीन समाज और सामाजिक जीवन का दुःख-सुख, राग-विराग, रहन-सहन, जीवन-यापन, आचार-व्यवहार, शील-संस्कार, हर समय के साहित्य में दर्ज होता है। ऐसा हुए बिना किसी भी साहित्य का न तो कोई तात्कालिक महत्व होगा, न शाश्वत। हर समय का साहित्य, उस काल के समाज के आम नागरिक के जीवन की गाथा के रूप में सामने आता है, जो बाद में चलकर इतिहास का स्रोत बन जाता है। इतिहास लिखते वक्त अथवा राजनीतिक आर्थिक शोध करते वक्त ऐसा कई बार हुआ है कि जब उत्खनन और आँकड़े विफल हो जाते हैं, तो उस काल के इतिहास का स्रोत साहित्य में ही मिलता है।

सन् 1960 के बाद साहित्य तथा राजनीति में एक साथ कई प्रश्न उठ खड़े हुए। चारों ओर फैले मोहक आदर्शों की गूँज और खोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति लोगों के मन में विराट शंका भर गई। परिणामस्वरूप स्थापित काव्यधारा के सौंदर्यवादी रुझान के विरुद्ध कुछ आधुनिक विचारकों और विशेष रूप से नई पीढ़ी के रचनाकारों के भीतर सीधी प्रतिक्रिया हुई। सृजनात्मक विद्रोह के जो तत्व पूर्व की काव्यधारा से गायब हो गए थे, इन रचनाकारों की कृतियों में उभरकर आने लगे।

हिंदी कविता में सन् 60 के बाद जो परिर्वतन दिखाई देता है। उसे आलोचकों ने मोहभंग का नाम दिया है। 1962 का भारत चीन सीमा संघर्ष और फिर पं. जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु ने भारतीय सर्जनात्मकता पर व्यापक प्रभाव डाला।

सन् 1967 के आम चुनाव में नौ राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनी।

इसी बीच मार्च 1967 ई. में नक्सलवादी आंदोलन आरंभ हुआ। इस आंदोलन के प्रभाव से धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, आलोक धन्वा, कुमार विकल, वेणु गोपाल, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह जैसे तीक्ष्ण स्वर वाले कवियों की एक पीढ़ी सामने आई। हिंदी कविता पर बात करते हुए विजय कुमार ने इस पूरे प्रसंग को गंभीरता से देखा है और सही कहा है कि ''रचनाकर्म में राजनीतिक विचारधारा और प्रतिबद्धता का प्रश्न नई स्फूर्ति और संकल्प के साथ उठा। पांचवें दशक की प्रगतिशील कविता के छूटे हुए धागे इस दौर की कविता से पुनः जुड़ने लगे। मुक्तिबोध का काव्य-व्यक्तित्व उनका आत्म-संघर्ष और उनकी सौंन्दर्य-शास्त्र संबंधी चिंताएँ बहस के केंद्र मे आ गईं। (सातवें) दशक के पूर्वार्द्ध में युवा मानसिकता में जो अराजक किस्म का आक्रोश और ''सिनिसिज्म'' फूटा था, उसे बहुत जल्दी एक संकल्पधर्मी, उग्र और युयुत्सु वामपंथी राजनीतिक चेतना ने अपदस्थ कर दिया। रचनाधर्मिता में संशयवाद की जगह प्रतिबद्धता ने ले ली।''

8.4 सातवें दशक की काव्य प्रवृत्तियाँ

सातवें दशक में तैयार हुई रचनाकारों की पूरी पीढ़ी आजादी, लोकतंत्र, लोकसेवा, लोकसभा, राजनीति, धर्माचरण और समाजिक आचरण को ढोंग और पाखंड की तरह देख रही थी। इसीलिए धूमिल की नजर में जनता तरह तरह की प्रवंचनाओं और शोषण का शिकार दिखती है। उनका मानना है कि जनता को ''समझा दिया गया है कि यहां ऐसा जनतंत्र है, जिसमें जिन्दा रहने के लिए घोड़े और घास को एक जैसी छूट है।'' वे जनता को एक ऐसी भीड़ की तरह देखते हैं ''जो दूसरों की ठंड के लिए अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढो रही है।'' यहाँ ''घोड़ा'' शोषक वर्ग का प्रतीक है, और ''घास'' शोषितों का। उच्चवर्गीय लोगों, सत्ताधारियों, सामंतों, ताकतवरों को सारी सुविधाएँ प्राप्त थीं, हर तरह की छूट थी। अपनी सुख-सुविधा, ऐशो-आराम, शानो-शौकत के लिए प्रभु वर्ग के लोग, सामान्य जनता के साथ किसी भी तरह का आचरण करने को स्वतंत्र हो गए थे। ऐसी ही स्थिति में राजकमल चौधरी ने देखा है –

> आदमी को तोड़ती नहीं है लोकतांत्रिक पद्धतियाँ, केवल पेट के बल
> उसे झुका देती है धीरे धीरे अपाहिज
> धीरे धीरे नपुंसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देश
> प्रेमी नागरिक बना लेती है
> ....
> हम लोगों को अब शामिल नहीं रहना है
> इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की साजिश में...

और अपनी इस तरह की समझ बनाने से तीन वर्ष पूर्व ही सन् 1964 में उन्होंने कहा –

> काल क्षमा नहीं करता है
> समय-रथ रुका नहीं रहता है
> उनके लिए, जो हाथ पर हाथ धरे रहते हैं निरुपाय
> अपनी पृथ्वी और अपने जल का

हवा का, उजाले का, जीवन का पक्षधर बनना पड़ेगा हमें-तुम्हें
अपनी स्वाधीनता-प्राण -संबल का! -

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपने समय का परिदृश्य कुछ यूँ देखते हैं कि -

जहाँ मैं खड़ा हूँ
पचास करोड़ लोग खाली पेट बजाते
ठठरिया खड़खड़ाते
हर क्षण मेरे सामने से गुजर जाते हैं
झांकियाँ निकलती हैं ढोंग की, विश्वासघात की
बदबू आती है हर बार
एक मरी हुई बात की" ...

इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी में अकविता के आंदोलन का सूत्रपात हुआ। यह आंदोलन एलेन गिन्सबर्ग के 'बिटनिक आंदोलन' और पश्चिम बंगाल की 'भूखी पीढ़ी' के प्रभाव में माना जाता रहा है। इसमें नैतिकता की परंपरागत अवधारणा का विरोध किया गया तथा अनास्था, क्षोभ और विद्रोह को मुखरित किया। 'अकविता' के व्यक्तिवाद में अपनी निजी पीड़ा को कवि समष्टि के रूप में भोगता था। अपनी शारीरिक व्याधि तक को राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर की व्याधि के रूप में देखता था। जब कवि कहता है -

क्यों एक ही युद्ध मेरी कमर की हड्डियों में और कभी
वियतनाम में
होता है -

अथवा, जब कवि कहता है -

मैं इतिहास-पुस्तक की तरह खुला पड़ा हुआ हूँ
लेकिन मेरा देश मेरा पेट मेरा ब्लाडर मेरी अंतड़ियां खुलने से पहले
सर्जनों को यह जान लेना होगा

हर जगह नहीं है जल अथवा रक्त अथवा मांस

अथवा मिट्टी
केवल हवा कीड़े जख्म और गंदे पनाले हैं अधिक स्थानों पर इस देश में
....

सब बुझ गए अचानक पहले पंद्रह अगस्त की पहली रात के बाद
अब राख ही राख बच गया है पीला मवाद ...

तो यहाँ कवि अपनी व्याधि को पूरे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय फलक पर मानवता के विरुद्ध एक व्याधि की तरह झेलता है। जब कैलाश वाजपेयी कहते हैं -

नींद और मृत्यु से अलग छटपटाकर
ढोई है मैंने
पूरी दशाब्दी
अब जब कि सब कुछ असाध्य है
सोचता हूँ सोचना भी छोड़ दूं
असंभव है दुनिया के उच्छिष्ट चेहरे पर
भोलापन लौटाना ...

तो यह वैयक्तिक भोग और कवि का यह व्यक्तिवाद बाहर भीतर का भेद मिटाता है। अकविता का व्यक्तिवाद, हताशा, निराशा और अनास्थावादी स्वर इन्हीं परिस्थितियों में

खड़ा हुआ था। राजकमल चौधरी के अलावा इस आंदोलन में गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, विष्णुचंद्र शर्मा, सौमित्र मोहन, आदि भी शामिल थे।

यह तय है कि इन कवियों ने अभिव्यक्ति के रास्ते में किसी वर्जना को स्वीकार नहीं किया। उसे जो कहना है, कहेगा; भले ही उससे पारंपरिक रूढ़ियाँ भंग हो जाएँ। इस अभिव्यक्ति में इनके सामने यदि स्त्री देह का ही प्रतीक उपस्थित हुआ, तो उसे अंकित करने में इन्हें हिचक नहीं हुई। राजकमल चौधरी को कूड़ा बीनती, अथवा कूड़े के ढेर पर जूठे पत्तल चाटती किसी विक्षिप्त स्त्री की दशा ऐसी दिखती है, जो किसी दरिन्दे के हवस के कारण गर्भवती हो गई है, तो उन्हें यह कहने में शर्म नहीं आई कि –

डस्टबीन की बगल में कूड़े के ढेर पर अड़ी हुई
ट्राम जंक्शन के पार्श्व में कोयले के टीले पर खड़ी हुई
...
एक अर्द्धविक्षिप्ता नारी कल बनेगी माता
नए जनमे हुए चमगादड़ नोचने लगेंगे उसके सूखे स्तन
...
कहां जाएगी फुटपाथ की यह शकुंतला, विश्व निस्पृह है
मैं आश्रयहीन कण्व हूं और दिशाएँ हैं दुष्यन्तों की सत्ता...

(भरत की प्रतीज्ञा)

अन्न, आश्रय, व्यवस्था, नियन्ता और मानसिक स्वास्थ्य के अभाव की मारी एक स्त्री जमाने भर का पाप अपने पेट में, या अपनी देह और लाज में ढोती हुई जिस देश में और जिस दशा में जी रही है, उस देश के बच्चे स्कूलों में लाख प्रार्थना गाएँ और भारत भाग्य विधाता की जय करें, इस शकुंतला का भाग्य कौन सुधारेगा!

ऐसी ही त्रासदी और विडंबनाओं को देखकर कैलाश वाजपेयी को 'परास्त बुद्धिजीवी का वक्तव्य' कविता में कहना पड़ा होगा –

चिल्लाती धूप में
बदहवास रात में
कहीं किसी गटर पर
हम खुली पलकों सो जाएंगे
हमें अब किसी भी व्यवस्था में डाल दो (जी जाएंगे)। ...

फिर जगदीश चतुर्वेदी ने देखा कि –

देश एक लड़खड़ाता वृद्ध मरीज ... देश प्रेम एक अय्याशी का
दिया हुआ महामंत्र। दुखती है कोई कनपटी की नस और
बाजुओं में रक्तपात की इच्छा पनपने लगती है ...

सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता को अकविता, विद्रोही कविता, आहत पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी, सहज कविता, विचार कविता आदि-आदि नामों के साथ काव्यान्दोलन के रूप में देखने की कोशिश की गई। इस दौर में व्यक्तिवाद इतना प्रबल हुआ कि छोटे-छोटे गुट में कवि बँटने लगे। व्यक्तिवाद, निषेध, नकार, अनास्था से भरी ये काव्य प्रवृत्तियाँ व्यक्ति-स्वातंत्र्य की वकालत करने लगीं।

ऐसे ही माहौल में आपात्काल की घोषणा हुई और अभिव्यक्ति पर अंकुश लगा। जो कवि आराम से विरोध, बन्दूक, हड़ताल और जुलूस की कविता रच रहे थे, उन पर एकाएक

नियंत्रण लग गया। यदि हम 1975 और उसके पहले और बाद में प्रकाशित कविताओं को देखें तो इस अन्तर को सहज ही महसूस कर सकते हैं। 1977 में आम चुनाव हुए, जिसमें जनता पार्टी बनी और फिर टूटी। 1980 में फिर आम चुनाव हुए, जिसमें पुनः कांग्रेस की सरकार बनी। इस तरह कवियों के सामने एक नई चुनौती आई। जिस जनता के समर्थन में ये कविताएँ लिख रहे थे, उस जनता ने पुनः कांग्रेस को सत्ता सौंप दी। रघुवीर सहाय की यह टिप्पणी समकालीन कविता का प्रस्थान बिन्दु है कि 'लोग भूल गए हैं।' तो, अब कविता क्या करें? कैसे समाज का समर्थन करें? और किसका कितना विरोध करे?

8.5 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

समकालीन कविता की कोई एक दिशा नहीं है। इसमें अनेक परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इनमें से भी कुछ प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, कुछ बीज रूप में मौजूद है, कुछ अभी अस्पष्ट हैं। अतः अभी हम इसकी संपूर्ण प्रवृत्तियाँ नहीं बता सकते, सिर्फ उसकी कुछ विशेषताओं के माध्यम से इसे समझने का प्रयास कर सकते हैं।

8.5.1 व्यवस्था से विद्रोह

इस दौर में वे कवि भी सक्रिय रहे, जिन्होंने अकविता और उसके बाद के दौर में अतिक्रांतिकारी एवं विद्रोही कविताएँ लिखी थीं। उनकी कविताओं का स्वर बदला हुआ दिखाई देता है। उदाहरण के लिए लीलाधर जगूड़ी ओर वेणु गोपाल को लिया जा सकता है। जगूड़ी की कविता है 'अन्तर्देशीय'। अन्तर्देशीय पत्र पर छपा हुआ रहता है 'इस पत्र के भीतर कुछ न रखिए'। जगूड़ी ने इस वाक्य को आधार बनाकर जीवन के कई नए संदर्भ उद्घाटित किए है। सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति के इस नितांत वैयक्तिक माध्यम पर सरकार की नजर है, इसलिए इस पत्र के भीतर कुछ न रखिए-

न अपने संबंधों की छाप
न दुःख, न शिकायतें
न अगली मुलाकात का वादा
न संक्रामक बीमारियां
न पारिवारिक प्रलाप
न अपने हस्ताक्षर
वरना ये पत्र पकड़ा जा सकता है
इस पत्र के भीतर कुछ न रखिए।

पत्र सम्प्रेषण का वैयक्तिक माध्यम है। इसमें यही सब तो लिखा जाता है। परंतु संकट ग्रस्त समाज में ऐसी आत्मीय बातें सत्ता विरोधी समझी जा सकती है। कवि कहना चाहता है कि आपको अनर्गल बातें बोलने की आजादी तो है, परन्तु अपना सच कहने की आजादी नहीं है। आजादी भी आजादी कम और निर्देश ज्यादा है। इन सब कविताओं के प्रतीक, बिम्ब और अप्रस्तुत विधान बदल गए हैं। सत्ता का भय पराजय बोध तक आ पहुँचा है। हालांकि कवि असहमति के अपने अधिकार को बचाए रखता है।

इसी तरह वेणु गोपाल की काव्य-भाषा में भी परिवर्तन हो चुका है। पहले कही गई बातों को कवि सरल, स्वाभाविक अंदाज में कहता है। कविता में विद्रोह अब छलकता नहीं। आपात्काल का विरोध करते हुए कवि ने लिखा –

जब भी कभी
नहीं होगा कोई वर्ष

1975 जैसा
तो किस कदर याद आएगा मुझे
मुसीबत की घड़ियों में किया गया
तुम्हारा यह प्यार।

यहाँ कवि राजनीति की तो कोई बात ही नहीं कर रहा है। वह तो प्रेम की ही बात कर रहा है। राजनीति अपने संदर्भों से व्यक्त हो रही है। हालाँकि कवि प्रेम कविता लिखने नहीं बैठा है। प्रेम का तो यहाँ इस्तेमाल हुआ है। विरोध और विद्रोह का यह छिपा हुआ स्वर हमें श्रीकांत वर्मा के काव्य-संग्रह 'मगध' में भी दिखाई देता है –

कोई चीखता तक नहीं
इस डर से
कि मगध की व्यवस्था में
दखल न पड़ जाए
मगध में व्यवस्था रहनी ही चाहिए

मगध में न रही
तो कहाँ रहेगी।

इसी तरह एक कविता में श्रीकांत वर्मा लिखते हैं –

कभी-कभी
मगध को जाने क्या हो जाता है
सब कुछ सामान्य होने के बावजूद
न कोई बोलता है
न मुँह खोलता है!

इनके अलावा भी कवियों ने जाने-अनजाने, सीधे-सीधे या सांकेतिक रूप से व्यवस्था की आलोचना की है।

8.5.2 कविता में खबर

समकालीन कविता की इस प्रवृत्ति का प्रारंभ रघुवीर सहाय से होता है। रघुवीर सहाय ने पहली बार खबर को कविता में रूपांतरित किया। अब तक यह माना जाता रहा है कि खबर और कविता अलग-अलग हैं। खबर तथ्यात्मक और गैर-काव्यात्मक घटना है, जबकि कविता में भाव, संवेदनाएँ और इन्द्रिय बोध रहता है। इसलिए कविता अधिक मानवीय अभिव्यक्ति है। रघुवीर सहाय ने इस द्वैत को तोड़ा। उन्होंने दिखाया कि खबर का भी एक मानवीय और भावात्मक पक्ष है। उसमे वे सब बातें है, जो कविता में होती हैं। कई बार तो यहाँ तक होता है कि एक सामान्य खबर संवेदनात्मक कविता में रूपांतरित हो सकती है। इसको समझने के लिए उनकी कविता 'रामदास' को लिया जा सकता है। रामदास नामक एक सामान्य आदमी उस दिन उदास था, क्योंकि उसे बता दिया गया था कि एक निश्चित दिन उसकी हत्या होगी। डरा हुआ रामदास घर से निकलता है कि किसी को साथ ले ले। परंतु उसे कोई साथी नहीं दिखा। फिर गली से हत्यारा आया। चाकू से मारा और चला गया। रामदास सड़क पर पड़ा हुआ और लोग उन लोगों को बताने दौड़ पड़े जिन्हें संशय था कि हत्या होगी। असहायता से उत्पन्न मानवीय दर्द की प्रभावशाली अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। जिसे हम आम आदमी कहते हैं, उसमें आज अवसरवाद और कायरता के साथ-साथ निर्लज्जता भी आ गई है। कायरता और अवसरवाद इस व्यवस्था की देन है। हम इसके लिए शर्मिंदा होते हैं। शर्मिंदा होना हमारी मानवीयता की पहचान है। कवि की पीड़ा इस बात पर है कि हम शर्मिंदा होना बन्द कर चुके हैं।

समकालीन कवियों ने खबर संबंधी अनेक कविताएँ लिखीं। अरुण कमल की एक कविता है 'जाल'।

सरकारी रिपोर्ट थी
गोली चलने से सिर्फ एक मौत
वो भी हॉस्पीटल में
तीन दिन बाद
पाँच हजार मुआवजा
भूल-चूक लेनी-देनी माफ।

कल रात मछुआरों ने डाला था जाल
आज मछली नहीं, निकली तीन लाशें।

कविता में प्रयुक्त 'सिर्फ' शब्द मौत जैसी भयावह घटना को हल्की-फुल्की मानने वालों पर परिहासमय चोट कर रहा है। वक्तव्य देने वाले जहाँ इसको अगम्भीर बनाकर प्रस्तुत कर रहे हैं, वहाँ कवि इसी को पीड़ादायक रूप में प्रस्तुत कर रहा है। विष्णु नागर, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल आदि कवियों ने भी तथ्य पर कविताएँ लिखी हैं।

विष्णु नागर की एक कविता है 'लड़के की मौत'। वैसे यह एक खबर है। लड़के का पिता दुःखी है और वह सोचता है कि '18 साल में लड़का जवान हुआ था' और अगले 18 साल तक वह बूढ़ा नहीं होता। अर्थात् कितना धन कमाता। लड़के का मरना उसके बाप के लिए आर्थिक नुकसान की तरह है। इस तरह की ढेरों कविताएँ इस दौर में लिखी गई हैं, जिनमें वर्तमान राजसत्ता की, तटस्थ दिखते हुए, आलोचना की गई है। कवि विरोध में उग्र नहीं होता परन्तु तटस्थता से अपनी असहमति दर्ज करवा देता है।

8.5.3 आत्मऔचित्य की स्थापना

जब व्यवस्था इतनी गर्हित है तो कवि स्वयं इसका विरोध क्यों नहीं करता? जनान्दोलन क्यों नहीं होते? यह प्रश्न भी इन कविताओं को पढ़ते हुए सहज ही उठ सकते हैं। जिन कवियों के लिए अपनी अनुभूति, अपनी पीड़ा अपना सुख-दुःख महत्वपूर्ण है, उनकी कविता में आत्ममोह का खतरा बराबर बना रहता है। छायावाद के संदर्भ में महादेवी वर्मा ने कहा था कि आज का कवि अपनी प्रत्येक सांस का इतिहास लिख लेना चाहता है। नई कविता के कवियों पर टिप्पणी करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा था कि नया कवि 'आत्म औचित्य की स्थापना' करता है। समकालीन कविता में इस प्रवृत्ति के अनेक रूप मिलते हैं।

कुमार विकल की कविताओं में आत्ममोह और आत्मालोचन का विरल सामंजस्य दिखाई देता है। उनकी कविता का आत्मस्वीकार देखिए-

मेरे विचारों में बुनियादी भटकाव है
कथनी और करनी का गहरा अलगाव है
मेरी आँखों में जो एक बत्ती टिमटिमाती है
मेरी क्रांति दृष्टि को वह धुँधला बनाती है
और जब भी मेरे सामने
कोई ऐसी स्थिति आती है -
एक तरफ क्रांति है और एक तरफ क्वाटर है
मेरी नजर सहसा क्वाटर की ओर जाती है।

इस आत्मस्वीकार में कवि अपनी कमजोरी का औचित्य ढूंढ़ लेता है। कमजोरी को प्रिय बनाकर प्रस्तुत करने की कला समकालीन कविता के कई कवियों में मिलती है। असद जैदी ने अपनी एक कविता में लिखा कि 'रहे मेरे रजाई, जिसने मुझे पाला। बाकी रहें वे जिन्हें रहना है।' अर्थात् कवि के लिए उसकी रजाई अधिक महत्वपूर्ण है। यदि आप

इसमें कोई अन्य निहितार्थ ढूँढना चाहें तो ढूँढ़ सकते हैं, परंतु कविता अभिधा के स्तर पर भी यही सामान्य अर्थ देती है।

समकालीन मध्यवर्गीय जीवन में अपराध बोध की स्थितियाँ आती ही रहती हैं। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' का काव्यनायक अपने आपसे पूछता है कि अब तक क्या किया? जीवन क्या जीया? इससे व्यक्तित्व में एक टूटन आती है। कवि जब अपने सामने ईमानदार होता है तो यह खंडित व्यक्तित्व अभिव्यक्ति पाता ही है। कुछ लोग इसकी अभिव्यक्ति करते हैं, कुछ लोग इस पर पर्दा डाल देते हैं। वे युगानुरूप प्रचलित काव्य कथ्य की अभिव्यक्ति करते हैं और सुविधानुसार जीवन जी लेते हैं। कविता में उनका संपूर्ण अभिव्यक्त नहीं होता। इस प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए "अपने बजाय" कविता में कुँवर नारायण ने लिखा है –

मैं जानता हूँ किसी को कानों कान खबर न होगी
यदि टूट जाने दूँ उस नाजुक रिश्ते को
जिसने मुझे मेरी ही गवाही से बाँध रखा है,
और किसी बातूनी मौके का फायदा उठाकर
उस बहस में लग जाऊँ
जिसमें व्यक्ति अपनी सारी जिम्मेदारियों से छूटकर
अपना वकील बन जाता है।

कुंवरनारायण आत्ममोह की इस प्रवृत्ति पर वैचारिक टिप्पणी करते हैं। हालाँकि यह मोह रचना को कई बार प्रभावशाली बनाता है, जहाँ कवि स्वयं अपने लिए ममतालू बन जाता है और इस तरह पाठक को भी अपने लिए स्नेह सिक्त कर देता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की यह कविता ऐसा ही बारीक काम करती है –

सारी जिन्दगी
मैं सिर छिपाने की जगह ढूँढता रहा
और अन्त में
अपनी हथेलियों से बेहतर जगह दूसरी नहीं मिली।

8.5.4 डायरी का अनुभव और कविता

आज का युग मीडिया का युग है। समाचार पत्र, पत्रकारिता और जनसंचार के इतने विविध साधन आज उपलब्ध हैं, जिनमें जीवन की सूचना दी जाती है, जीवन की समझ दी जाती है, अपने आपको अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। इतना अधिक उद्घाटित हो चुका है कि कविता में कहने के लिए कुछ बचा ही नहीं। इसलिए कई कवि जानी-बूझी परिस्थितियों का कविता में नाट्यरूपांतरण करते हैं। जो बातें हम जानते हैं, कविता उन्हें फिर से बताती है, या पुष्ट करती है। राजेश जोशी की कविता में इस प्रवृत्ति की तरफ आलोचकों ने ध्यान दिलाया है। कई कवियों में यह प्रवृत्ति मिलती है। सूचनाओं के इस दबाव में कई कवियों ने कुछ ऐसी बातों पर कविताएँ लिखी हैं, जिन्हें खबरों में, अखबारों में, राजनीतिक वक्तव्यों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यहीं समकालीन कविता डायरी के अनुभव के करीब पहुँच जाती है।

आजकल ऐसा माना जाता है कि 'सब कुछ' तो कहा जा चुका है। अतः जो कुछ कहा जा चुका है उसे कविता में भी कह दो। यदि कहे हुए को दुबारा कहना है, भले ही बेहतर ढंग से कह दें, तब कविता के कथ्य की मौलिकता कहाँ बचती है? विष्णु खरे की कविता सिद्ध करती है कि सब कुछ कह चुकने के बाद भी कुछ ऐसा 'बच' जाता है, जिसे सिर्फ कविता में ही कहा जा सकता है। इसे विष्णु खरे ने 'अव्यक्त' कविता में व्यक्त किया है। इसमें एक किशोर छात्र का चरित्र है। वह एक दिन कक्षा में नहीं जाता। बाहर बैठा-बैठा

कुछ-कुछ सोचता रहता है, एकाएक उसे लगता है कि -

चीजें
मेरी उपस्थिति के बिना भी बदस्तूर हो रही हैं और होती रहीं थी
और दूसरी तरफ यह कि मैं बेखबर था
कि जब मैं अपने विश्व में व्यस्त रहता हूँ

तो एक बृहत्तर संसार निर्लिप्त बेपरवाही से अपनी हलचलों में डूबा रहता है -

भयावह क्षण था अपने सब कुछ परिचित से कटने का
और एक अदृश्य विराट से जुड़ने का।

कविता के अन्त में उसके सहपाठी आते हैं, लेकिन काव्य नायक अपने इस अनुभव क्षण के बारे में कुछ नहीं कह पाता। यह 'अव्यक्त' है। इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। यही कविता है। शेष सब सामग्री है। यह अव्यक्त लगभग डायरी का अनुभव है। कई कवियों ने अपनी कविता में अपने इस नितांत व्यक्तिगत, अव्यक्त सच को अभिव्यक्त किया है।

बोध प्रश्न

1. अशोक बाजपेयी ने सन् 1980 के वर्ष को .... का वर्ष घोषित किया।
2. समकालीन शब्द का .... अर्थ होता है।
3. सन् 1960 के पश्चात् हिंदी कविता को किन–किन नामों के साथ काव्यांदोलन के रूप में देखा गया?
4. सातवें दशक की काव्य प्रवृत्तियों की चार विशेषताओं के नाम लिखिए।

   ....

   ....

   ....
5. समकालीन हिंदी कविता की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए, सातवें दशक की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

   ....

   ....

   ....

8.6 स्त्री स्वर

मंगलेश डबराल का मत है कि 'छायावादी युग में उसके तमाम पौरुषेय विन्यास के बावजूद एक महादेवी वर्मा-और एक हद तक सुभद्रा कुमारी चौहान मौजूद थीं, जो पंत-प्रसाद-निराला से होड़ लेतीं उनके समकक्ष उपस्थित दिखती हैं, लेकिन नई कविता के अपेक्षाकृत स्वाधीन दौर में शकुंत माथुर, कीर्ति चौधरी, कांता, स्नेहमयी चौधरी, अमृता भारती, इंदु जैन, सुनीता जैन जैसी रचनाकार भी कविता के अपने एक अधबने या अधटूटे-से घर में पुरुष-आक्रांत एक छाया जैसी रहती हुई दिखती हैं, जिनमें से स्नेहमयी चौधरी ही एक हाशिए से उभरकर स्त्री जीवन का 'पूरा गलत पाठ' पहचानने में समर्थ होकर आती हैं। अकविता के अराजक दौर में मणिका मोहिनी, मोना गुलाटी और कई दूसरी महिलाएँ

सक्रिय रहीं, लेकिन उनकी विफलता उस आंदोलन में ही छिपी हुई थी, क्योंकि उसमें स्त्री की मुक्ति या स्वाधीनता की कोई अवधारणा नहीं थी। अराजक विद्रोह और यौन-दुस्साहस के स्तर पर यह आंदोलन स्त्रियों से सिर्फ पुरुष जैसा बनने का आग्रह करता था।' अकविता आंदोलन के पश्चात् आज हिंदी कविता में महिला कवियों की पर्याप्त उपस्थिति है। गगन गिल, कात्यायनी, अनामिका, निर्मला गर्ग, नीलेश रघुवंशी, तेजी ग्रोवर, अर्चना वर्मा, सविता सिंह, क्षमा कौल, अनीता वर्मा, जया जादवानी आदि नाम अपनी विशिष्ट पहचान के साथ उभर कर आए हैं और समकालीन कविता की धारा को पुष्ट करते हैं। ड्राइंग रूप से रसोईघर तक, क्रेच से जच्चाघर तक, चूल्हे चौके से दफ्तर तक, मयखाने से संसद तक की स्थितियाँ अपने पूरे प्रभाव और मौलिकता के साथ इनके यहाँ दर्ज हैं। स्त्री जीवन का मौलिक सच लेकर आई इन महिला कवियों की कविताएँ अपनी अनूठी तस्वीर पेश करती हैं।

स्त्री जीवन पर कविताएँ तो लगभग सभी बड़े कवियों ने लिखीं। लेकिन स्त्री द्वारा लिखी गई कविताओं में उनके जीवन का सच जितना तल्ख रूप में उभरकर आया है उतना अन्यत्र कहीं नहीं आ पाया। निराला, नागार्जुन, राजकमल चौधरी, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह आदि कवियों के यहाँ स्त्री-जीवन का चित्र मिलता है, मगर वह पुरुष द्वारा देखा गया, और चित्रित किया गया स्त्री-जीवन रहा है; पर स्त्री द्वारा स्त्री-जीवन पर लिखी कविता में अनुभव का एक नया संसार उद्घाटित होता है। एक निरक्षर स्त्री अपने उदार पति की नजर में रसोई पकाने वाली दाई अथवा बच्चा जनने वाली मशीन सिर्फ इसलिए घोषित हो जाती है कि वह अमृता शेरगिल और पी.टी.उषा को नहीं जानती। उसका पति उसका भला करना चाहता है। स्त्री का भला करने को कवयित्रियों ने उसके दंभ के रूप में देखा, कात्यायनी की कविता 'नहीं हो सकता तेरा भला' में इस व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है -

> बेवकूफ जाहिल औरत!
> कैसे कोई करेगा तेरा भला?
> अमृता शेरगिल का तूने
> नाम तक नहीं सुना
> ....
> पी.टी.उषा को जानती तक नहीं
> ....
> यह औरत तो बस भात रांध सकती है
> और बच्चे जन सकती है
> इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है? ...

अपनी इस छोटी सी कविता में विराट व्यंग्य करती हुई कात्यायनी ने कई परतें खोली हैं। समाज में बेटी को जन्मजात पराई माना जाता है। मां-बाप के घर 'पराया धन' और ससुराल में 'पराए की बेटी' समझी जाने का दंश भोगती हुई स्त्री अनामिका के यहाँ पूछती है -

> जिनका कोई घर नहीं होता
> उनकी होती है भला कौन-सी जगह?
> कौन-सी जगह होती है ऐसी
> जो छूट जाने पर
> औरत हो जाती है।

8.7 दलित कविता का स्वर

समकालीन कविता में दलित कवियों की उपस्थिति भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। हिंदी में निर्गुण काव्य धारा के साथ इस समुदाय के कवि एक साथ कविता की दुनिया में आए। आधुनिक काल के प्रारंभ में हीरा डोम ने दलित जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया। भगवान के मुक्तिदाता रुप की चर्चा करते हुए कवि ने प्रश्न किया कि क्या आप भी 'डोमा जानि हमनी के छुए से डेरइले'! दलित काव्य की यह परंपरा दबी-ढकी चलती रही थी। हालांकि हिंदी आलोचना में इनकी चर्चा लगभग नहीं होती थी। समकालीन कविता में इनका अलग स्वर सुनाई पड़ता है। मलखानसिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती आदि कवियों एवं सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, निर्मला पुतुल आदि कवयित्रियों ने दलित कविता को एक विशिष्ट पहचान दी। इन कवियों ने जातिवाद के विरुद्ध आक्रामक प्रहार किए।

प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुंआ' की तर्ज पर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इसी शीर्षक से एक कविता लिखी उन्होंने लिखा –

कुंआ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत -खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?
गाँव?
शहर?
देश?

संथाली कवयित्री निर्मला पुतुल की एक कविता है 'सुगिया'। सुगिया की सब तारीफ करते हैं। कोई कहता तुम हँसती हो तो बहुत अच्छी लगती हो। किसी को उसका गाना, किसी को उसका नाच, किसी को उसकी आँखें बहुत खूबसूरत लगती है। सुबह से शाम तक काम करती हुई सुगिया सोचती है –

यहाँ हर पाँचवाँ आदमी उससे
उसकी देह की भाषा में क्यों बतियाता है?
काश, कोई कहता कि –
तुम बहुत मेहनती हो सुगिया
बहुत भोली और ईमानदार हो तुम
काश, कहता कोई ऐसा!!

यह दर्द दलित कविता का अपना दर्द है, जिसकी अभिव्यक्ति से समकालीन कविता की अर्थ-भूमि का विस्तार हुआ है।

8.8 समकालीन हिंदी काव्यधारा के प्रमुख कवि

समकालीन कवियों में अनेक परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के कवि है। इस दौर में कई पीढ़ियों के कवि एक साथ सक्रिय रहे हैं। इस दौर में आकर पुराने कवियों का स्वर भी बदला है। एक तरफ नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन शास्त्री नए ढंग की कविताएँ लिखते हैं दूसरी तरफ नई कविता के कवि रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, कुंवर नारायण के नए काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इस दौर की इनकी कविताएँ इनकी पिछली

कविताओं से गुणात्मक रूप से अलग प्रकृति की हैं। इन्हीं के साथ-साथ अशोक बाजपेयी, केदारनाथ सिंह और विष्णु खरे की कविताएँ भी मिलती हैं। इन कवियों के साथ-साथ धूमिल और रामकमल चौधरी से प्रभावित विद्रोही कवियों के नए स्वर भी सुनने को मिलते हैं। इनमें सौमित्र मोहन, वेणु गोपाल, आलोक धन्वा, कुमार विकल जैसे कवि प्रमुख हैं। इसी के साथ हिंदी कवियों की एक नई पीढ़ी इस दौर में आई जिनमें मंगलेश डबराल, अरुण कमल, राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्रपति, असद जैदी, उदयप्रकाश, देवी प्रसाद मिश्र आदि शामिल हैं। महादेवी वर्मा के पश्चात् हिंदी में बहुत कम कवयित्रियाँ साहित्य में आईं। कीर्ति चौधरी, शकुंत माथुर, इन्दु जैन ने कुछ काव्य रचनाएँ की थीं। समकालीन दौर में कवयित्रियों की उपस्थिति विचारणीय है। इनमें कात्यायनी, गगन गिल, अनामिका, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी प्रमुख हैं। इसी के साथ ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम आदि कुछ दलित कवियों की महत्वपूर्ण कविताएँ भी सामने आईं। कुल मिलाकर समकालीन कविता में अनेक रुचियों, प्रवृत्तियों, वय के रचनाकार एक साथ सक्रिय हुए। इसलिए इन सभी रचनाकारों के सम्मिलित प्रभाव का अध्ययन करके समकालीन कविता को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए।

विष्णु खरे का जन्म 09 फरवरी 1940 को छिन्दवाड़ा (मध्य प्रदेश) में हुआ। सन् 1963 में उन्होंने क्रिश्चियन कॉलेज, इन्दौर से अंग्रेजी में एम.ए. किया। सन् 1963-75 तक मध्य प्रदेश और दिल्ली के महाविद्यालयों में अध्यापन किया। सन् 1976-84 तक साहित्य अकादेमी में उपसचिव रहे। सन् 1985 में नवभारत टाइम्स में प्रभारी सम्पादक का कार्यभार सम्हाला और सन् 1993 में व्यवस्थाजन्य मतान्तर के कारण वहाँ से इस्तीफा दे दिया। सन् 1960 में प्रकाशित टी.एस.इलियट की प्रसिद्ध कविता 'वेस्ट लैण्ड' का हिंदी अनुवाद उनकी पहली प्रकाशित कृति है। 'वयम्' पत्रिका का उन्होंने सम्पादन किया। सन् 1970 में उनका पहला कविता संग्रह 'एक गैर रूमानी समय में' प्रकाशित हुआ। उन्होंने असंख्य विदेशी रचनाओं का हिंदी में तथा कई महत्वपूर्ण हिंदी कवियों की कविताओं का अंग्रेजी एवं जर्मन में अनुवाद किया। 'खुद अपनी आँख से', 'सबकी आवाज के पर्दे में' 'पिछला बाकी' 'काल और अवधि के दरमियान' और 'अन्य कविताएँ' (कविता संग्रह) तथा 'आलोचना की पहली किताब' (आलोचना) उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ है।

मंगलेश डबराल का जन्म 16 मई 1948 को गढ़वाल जिले के काफलपानी गाँव में हुआ। प्रतिष्ठित हिंदी कवि के रूप में उन्होंने कई देशों की यात्राएँ कीं। उनका पहला संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' सन् 1981 में प्रकाशित हुआ। उन्हें ओम प्रकाश स्मृति सम्मान, श्रीकान्त वर्मा पुरस्कार, साहित्य अकादेमी सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं' 'नये युग में शत्रु' (कविता-संग्रह) उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ है।

केदारनाथ सिंह का जन्म सन् 1934 में चकिया (बलिया, उत्तर प्रदेश) में हुआ। सन् 1964 में उन्होंने आधुनिक हिंदी कविता में विम्बविधान विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1952-53 के आसपास उन्होंने विधिवत् काव्यलेखन शुरू किया। सन् 1954 में पाल एलुअर की प्रसिद्ध कविता 'स्वतन्त्रता' का अनुवाद किया। इस क्रम में उन्हें समकालीन काव्य-चेतना और नई सौन्दर्य-दृष्टि से पहला परिचय हुआ। वे तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण सहभागी कवि हैं। सन् 1960 में उनका पहला कविता संग्रह प्रकाशित हुआ। सन् 1980 में उन्हें केरल के 'कुमारन आशान' कविता पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्हें साहित्य अकादेमी सम्मान, दयावती मोदी कविशेखर सम्मान, सरस्वती सम्मान, शलाका सम्मान, ज्ञान पीठ सम्मान आदि दिए जा चुके हैं। उन्हें उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं : अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, यहाँ से देखो, बाघ अकाल में सारस, तालस्ताय और साइकिल, सृष्टि पर पहरा (कविता संग्रह); कल्पना और छायावाद, आधुनिक कविता में बिम्बविधान (आलोचना) आदि।

रघुवीर सहाय का जन्म 09 दिसम्बर 1929 को लखनऊ में हुआ। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। वे बहुप्रशंसित कविता-संग्रह दूसरा सप्तक के सम्मानित सहभागी कवि थे। नव जीवन दैनिक में उपसम्पादक एवं सांस्कृतिक संवाददाता रहे। प्रतीक के सहायक सम्पादक तथा आकाशवाणी के समाचार प्रभाग में उप सम्पादक रहे। सन् 1969-82 तक वे दिनमान के प्रधान सम्पादक रहे। सन् 1982-90 तक उन्होंने स्वतन्त्र लेखन किया। उनका निधन 30 दिसम्बर 1990 को हुआ। उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं : सीढ़ियों पर धूप में, आत्महत्या के विरुद्ध, हँसो हँसो जल्दी हँसो, कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, एक समय था (कविता संग्रह); रास्ता इधर से है, जो आदमी हम बना रहे हैं (कहानी संग्रह); दिल्ली मेरा प्रदेश, लिखने का कारण, ऊबे हुए सुखी, वे और नहीं होंगे जो मारे जाएँगे, भँवर लहरें और तरंग, अर्थात (निबन्ध संग्रह) आदि। इसके अलावा उन्होंने पर्याप्त रूप से अनुवाद कार्य भी किया है। सन् 1982 में 'लोग भूल गए हैं' कविता संग्रह के लिए उन्हें साहित्य अकादेमी सम्मान दिया गया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि रघुवीर सहाय ने हिंदी कविता और हिंदी काव्य चिन्तन के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कविता की बुनावट और भाषा शिल्प में सहजता लाने के लिए उनको याद किया जाता है।

कुँवर नारायण का जन्म 19 सितम्बर 1927 को हुआ। उनका पहला कविता संग्रह चक्रव्यूह सन् 1956 में प्रकाशित हुआ। कुछ ही दिनों बाद सन् 1959 में उनकी कविताएँ अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीसरा सप्तक में संकलित हुई। सन् 1961 में 'परिवेश : हम तुम' प्रकाशित हुआ। उपनिषद के प्रसिद्ध चरित्र नचिकेता की कथा पर आधारित काव्य पुस्तक 'आत्मजयी' सन् 1965 में प्रकाशित हुई जो हिंदी में अति सम्मानित कृति के रूप में जानी जाती है। इस पुस्तक में कवि ने अत्यन्त मौलिक और आध्यात्मिक स्थापनाएँ दी हैं। हिंदी कवि के रूप में उन्होंने कई देशों की साहित्यिक यात्राएँ की हैं। संसार की कई भाषाओं में उनकी रचनाएँ अनूदित और चर्चित हुई हैं। उन्हें हिन्दुस्तानी अकादेमी पुरस्कार, व्यास सम्मान, साहित्य अकादेमी सम्मान, कबीर सम्मान, शलाका सम्मान, प्रेमियो फेरोनिया (इटली), ज्ञानपीठ पुरस्कार आदि कई सम्मान दिए जा चुके हैं। उन्होंने सन् 1956-61 तक युग चेतना, सन् 1974-78 तक नया प्रतीक, सन् 1976-78 तक छायानट के सहसम्पादक का कार्य किया। भारत देश की कई साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं और संगठनों के महत्वपूर्ण एवं मानद पदों पर उन्होंने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। उनकी कुछ अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ हैंः अपने सामने, कोई दूसरा नहीं, इन दिनों (कविता संग्रह); आत्मजयी, वाजश्रवा के बहाने (खंड काव्य), आकारों के आस-पास (कहानी संग्रह); आज और आज से पहले, मेरे साक्षात्कार (निबन्ध, साक्षात्कार) आदि। इसके अलावा उन्होंने ढेर सारी देशान्तर की रचनाओं का अनुवाद कार्य भी किया है।

विनोद कुमार शुक्ल का जन्म सन् 1937 में मध्य प्रदेश में हुआ। समकालीन कवियों को हतप्रभ और आलोचकों अवाक करते हुए जब सन् 1971 में उनका पहला संग्रह पहचान सीरीज के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ, तो हिंदी कविता का परिदृश्य एकदम से जगमगा उठा। उनकी कई रचनाएँ मराठी, मलयालम, उर्दू, अंग्रेजी और जर्मन भाषाओं में अनूदित एवं प्रकाशित हैं। उन्हें मध्य प्रदेश शासन का गजानन माधव मुक्तिबोध फेलोशिप सन् 1975-76 के लिए दिया गया। सन् 1981 में मध्य प्रदेश कला परिषद का रजा पुरस्कार - 'वह आदमी चला गया नया गरम कोट पहनकर विचार की तरह' कविता संग्रह के लिए दिया गया। उन्हें दयावती मोदी कविशेखर सम्मान तथा साहित्य अकादेमी सम्मान से भी सम्मानित किया गया। 'लगभग जय हिंद' 'सब कुछ होना बचा रहेगा' 'कविता से लंबी कविता', 'आकाश धरती को खटखटाता है' (कविता संग्रह), 'नौकर की कमीज', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' (उपन्यास) 'पेड़ पर कमरा' (कहानी संग्रह) उनकी अन्य प्रमुख कृतियाँ हैं।

राजेश जोशी का जन्म सन् 1946 में मध्य प्रदेश के नरसिंहगढ़ में हुआ। प्रारम्भ में उन्होंने वातायन, लहर, पहल, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका के लिए विशेष रूप से स्वतन्त्र लेखन किया, फिर बाद में 'नया विकल्प' 'नया पथ' और 'वर्तमान साहित्य' के सम्पादन कार्य में अपना प्रचुर अवदान दिया। इसी बीच उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की। उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं : 'एक दिन बोलेंगे पेड़', दो पंक्तियों के बीच 'चाँद की वर्तनी' (कविता संग्रह), 'समरगाथा' (लंबी कविता) समवर और अन्य कहानियाँ, कपिल का पेड़ (कहानी संग्रह) आदि। इसके अलावा राजेश जोशी ने नाटक एवं बच्चों के लिए कई महत्वपूर्ण गीत भी लिखे हैं। उनकी कई रचनाएँ अंग्रेजी, उर्दू, रूसी एवं जर्मन भाषाओं सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हैं। उन्हें मुक्तिबोध पुरस्कार, माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा स्मृति सम्मान, शिखर सम्मान, और सन् 2002 में 'दो पंक्तियों के बीच' कविता संग्रह के लिए साहित्य अकादेमी सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।

अशोक वाजपेयी का जन्म सन् 1941 में हुआ। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करने के बाद कुछ दिनों कॉलेज में अध्यापन कार्य किया, फिर प्रशासनिक सेवा में आ गए। भारतीय प्रशासनिक सेवा में कई महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए उन्होंने विविध सांगठनिक कार्य किए और निरन्तर साहित्य सेवा में जुटे रहे। कई विधाओं में उनकी कृतियाँ प्रकाशित और प्रशंसित हैं। उनके महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं : 'शहर अब भी सम्भावना है','कहीं नहीं वहीं' 'तत्पुरुष', 'बहुरि अकेला', 'इबारत से गिरी मात्राएँ', 'उम्मीद का दूसरा नाम', 'विवक्षा घास में दुबका आकाश' (कविता संग्रह); 'फिलहाल', 'कुछ पूर्वग्रह', 'समय से बाहर', 'कविता का गल्प' (आलोचना), आदि। इसके अलावा उन्होंने अनुवाद में भी कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। उनकी रचनाएँ कई भारतीय भाषाओं तथा अन्य विदेशी भाषाओं में अनूदित हैं। उन्हें साहित्य अकादेमी सम्मान, दयावती मोदी कविशेखर सम्मान सहित कई राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्मानों से नवाजा गया है। वे महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रथम कुलपति रह चुके हैं। साहित्य कला, एवं संगीत के मर्मज्ञ चिन्तकों में उनका नाम शुमार होता है।

अरुण कमल का जन्म 15 फरवरी 1954 को नासरीगंज (रोहतास, बिहार) में हुआ। काव्य-लेखन के लिए उन्हें भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा स्मृति पुरस्कार, रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार, शमशेर सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। 'नए इलाके में' कविता संग्रह के लिए उन्हें सन् 1998 में साहित्य अकादेमी सम्मान दिया गया। अफ्रो एशियाई युवा लेखक सम्मेलन, ब्राजाविले में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। वे कुछ समय तक सुप्रसिद्ध हिंदी पत्रिका 'आलोचना' के संपादन से सम्बद्ध रहे। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ हैं : 'अपनी केवल धार', 'सबूत', 'नए इलाके में' 'पुतली में संसार' (कविता संग्रह); गोलमेज (आलोचनात्मक निबंध)। इसके अलावा वियतनामी कवि तोहू की कविताओं एवं टिप्पणियों की एक अनुवाद पुस्तिका तथा अंग्रेजी में वायसेज नाम से भारतीय युवा कविता की पुस्तक भी प्रकाशित है। उनकी कविताएँ कई भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में अनूदित हैं।

8.9 समकालीन हिंदी कविता की भाषा

पूर्ववर्ती कविता की तुलना में समकालीन कविता की भाषा बहुत हद तक बदल चुकी है। आज छायावादी काव्य भाषा लगभग मिट चुकी है। उसका स्थान आम आदमी की बोलचाल की भाषा ने ले लिया है। नई पीढ़ी के कवियों की आवाज क्षोभ और क्रोध से, कई बार निराशा और निरर्थकता बोध से, नकार-निषेध या अकेलेपन से भरी हुई थी ; तो उनके पूर्ववर्ती और बुजुर्ग जन भी कुछ कम नहीं थे। भाषा और अभिव्यक्ति के स्वभाव और

तेवर में थोड़ा सा फर्क जरूर था। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को देश की स्थिति का स्वरूप ऐसा दिखने लगा था कि रोने, गाने, हँसने, चीखने, प्यार करने, गाली देने... के प्रभाव का अंतर मिट गया था। कवि को अपने और अपने सहजीवी नागरिक की मनोदशा पर चिंता होने लगी थी –

मैं हंसता हूँ, गाता हूँ
रोता हूँ, चीखता हूँ
प्यार करता हूँ, गालियाँ देता हूँ
लेकिन हर स्थिति में
वैसा का वैसा ही रह जाता हूँ
जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ....।

कैलाश वाजपेयी कहते हैं –

जहाँ हर यात्रा का अर्थ दुर्घटना है
और अस्पतालों में मृत्यु अधिक निश्चित है। ...

और बुद्धिजीवी अय्याश है
जहाँ भीड़ मूर्ख है
रचयिता विधान के और
कुछ विदूषक शासन चलाते हैं ...।

राजकमल चौधरी कहते हैं –

आदमी को इस लोकतंत्री संसार से अलग हो जाना चाहिए
चले जाना चाहिए कस्साबों गांजाखोर साधुओं
भिखमंगों अफीमची रंडियों की काली और अंधी दुनियाँ में मसानों में
अधजली लाशें नोचकर
खाना श्रेयष्कर है जीवित पड़ोसियों को खा जाने से

सातवें दशक के पूर्वार्द्ध की अराजक स्थिति ने ही उस दौर के युवा कवियों की भाषा और अभिव्यक्ति अराजक कर दी थी, तो प्रौढ़ कवि भी कोई कम क्रोधित नहीं थे। अंतर सिर्फ उम्र के प्रभाव का था। उस दौर में नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध अथवा रघुवीर सहाय ताजा-ताजा आए हुए होते, तो बहुत संभव है कि उनकी भाषा भी वही हुई होती। मगर यह बड़ी बात है कि नए-पुराने हमारे कवि मिलकर एक ही तरह से सोच समझ रहे थे।

इस अंतराल की कविता की भाषा, शब्दावली और मुहावरे लगातार जनोन्मुख हुए हैं। अपने अनुभव को प्रभावकारी ढंग से अभिव्यक्त करने में उन्होंने निरंतर अपने सारे कौशल और सारी प्रतिभा का उपयोग किया है । यही कारण है कि इस परंपरा के कवियों ने समाचार शैली, संवाद शैली, वक्तव्य शैली, संदेश शैली, पत्र शैली, विचार-विनिमय शैली, आत्मालाप शैली, घोषणा शैली, निर्देश शैली,आदेश शैली, अनुग्रह शैली, अवज्ञा शैली, धिक्कार शैली, व्यंग्य शैली, ब्याज निन्दा शैली, ब्याज प्रशंसा शैली, आत्मग्लानि शैली, आत्मप्रशंसा शैली ... सभी तरह की शैलियों, पद्धतियों का उपयोग किया गया। बिंब-प्रतीक योजनाओं में मिथक, पुराण, इतिहास से लेकर अत्याधुनिक जीवन के किसी भी उपादान से परहेज नहीं किया गया। व्यक्तिपरक कविता से लेकर इतिहास पुरुष और देवी-देवता तक का उपयोग इस दौर के कवियों ने किया। अपनी बात प्रभावकारी ढंग से कहने, जनता को जनता की स्थिति से परिचय कराने, और उन्हें अपनी भलाई के लिए प्रतिपक्ष में खड़े होने, अपनी शक्ति को पहचानने की दृष्टि देने के लिए इस दौर के कवियों ने

पर्याप्त श्रम और उद्यम किया है। बाज, गिद्ध, तोता, बगुला, कुत्ता, भेड़िया, लोमड़ी, हाथी, बाघ से लेकर मोची, मल्लाह, ड्राइवर, इंजीनियर, अधिकारी, कसाई, अल्लाह, ईश्वर, जीसस ...सब इनकी कविताओं में उपस्थित हुए हैं और जनता को समकालीन समय का सच बताते रहे हैं।

8.10 समकालीन हिंदी कविता में बिंब प्रतीक

समकालीन कविता ने समकालीन यथार्थ को व्यक्त करने के लिए नए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। मानवीय आचरण के इस तरह के अत्यंत छोटे-छोटे पहलुओं को इस दौर के कवियों ने न केवल अपने कविताओं का विषय बनाया, बल्कि उस विषय और बिंब में अपनी संवेदनशीलता, सृजन कौशल और जीवन दृष्टि के बल-बूते पर पूरी सार्थकता के साथ एक नया जीवन, नया अर्थ और नई व्याख्या भर दी है। इस पद्धति का लाभ न केवल उस प्रसंग और वस्तुस्थिति को हुआ है, बल्कि कवि को तोष मिला है और कविता का लक्ष्य भी निखर उठा है। समकालीन कविता का विषयबोध अपने पाठकों पर इस तरह चौतरफा प्रभाव डालता है, अपने अर्थ एवं प्रभाव की नई दुनिया में चारों तरफ से घेरता है।

संशय, अनिश्चय, त्रासदी, दहशत, वहशत, अभाव, सन्नाटा, सूनापन, एकाकीपन ... की शृंखला के बीच जी रहे नागरिक जीवन को समकालीन कवि संजीदगी से देख रहा है, जी रहा है। इन सभी मुसीबतों को अपनी पीड़ा की तरह, और अपनी व्याधि को इन विसंगतियों की तरह जी रहा है, दिग्भ्रम-संभ्रम और प्रपंच, प्रवंचना का शिकार हो रहा है, ऐसा, कि अपनी ही स्थिति की जानकारी दूसरों से लेने की स्थिति में आ जाता है। व्यक्ति के मुंह से निकली ध्वनि कागज पर अंकित होते-होते, अथवा श्रोता के कानों तक पहुँचते-पहुँचते किस तरह अपने रूप, ध्वनि और अर्थ में भिन्न हो जाती है, उसे रघुवीर सहाय आंकते हैं –

मैं क्या कर रहा था जब मैं मरा
मुझसे ज्यादा तो तुम जानते लगते हो
तुमने लिखा मैंने जो कहा था स्वाधीनता
शायद मैंने कहा था बचाओ

(हंसो, हंसो जल्दी हंसो)

इसी माहौल में जब अरुण कमल का संसार बदलता है तो उन्हें कुछ बेहतर लगता है –

खोलता हूँ खिड़की
और चारों ओर से दौड़ती है हवा
मानो इसी इंतजार में खड़ी थी पल्लों से सट के
पूरे घर को जलभरी तसली-सा हिलाती
मुझसे बाहर मुझसे अनजान
जारी है जीवन की यात्रा अनवरत
बदल रहा है संसार

और मनमोहन को सूर्योदय की आशा रहती है।

सूर्योदय
औचक से घट जाने वाली
अनायास घटना नहीं

क्षण-क्षण
टूटना है अंधेरों का
तार-तार
बूंद-बूंद
घुलना है चुप-चुप
कटना है उजास का

ऐसी कविताएँ प्रमाणित करती हैं कि दहशत और अविश्वास से भरे इस माहौल में सुख की आकांक्षा और आशा भी कम नहीं है। यह छोटी बात नहीं है कि पराधीनता के आतंक से ऊबा भारतीय नागरिक एक दशक में स्वदेशी शासक की गंदी नीति समझ गया और तब से लेकर आज तक, लगातार 'दबी हुई दूब' की तरह, ताड़ के पेड़ की तरह, गांठदार लकड़ी की आग की तरह, प्रतिघात और प्रतिरोध के स्वर और आचरण को लगातार जीवित और जीवंत रख रहा है।

8.11 काव्य-लय और छंद-चेतना

हिंदी में प्रगतिवाद के समय में ही मुक्त छंद का काव्य लेखन आ गया था। पर यह परंपरा छंद से परहेज करने के लिए नहीं बनी थी, वहाँ तुकबंदी और पारम्परिक छंद-विधान से मुक्ति का आभास था। वह भी केवल इसलिए कि तुकबंदी की मशक्कत, अन्त्यानुप्रास और छंद की मात्रा की गिनती के लिए कई बार कविता में पर्यायवाची शब्दों का चयन, शब्दों का अपव्यय, अर्थहीन पदों का समावेश ... आदि करना पड़ता था, और इस उद्यम में कविता अतिकथन अथवा मितकथन का शिकार हो जाती थी, और कविता की ताकत कुंद हो जाती थी। इस कारण कवि-कोविदों ने इससे स्वाधीनता ले ली। पर, इसका अर्थ कविता से लय और छंद का लोप हो जाना नहीं था। किसी भी समर्थ कवि ने अपनी रचना-प्रक्रिया में ऐसा किया भी नहीं। बल्कि इन दोनों ही फलकों पर कविगण पूरी तरह सावधान रहे। गौरतलब है कि गद्य का भी अपना छंद-विधान और अपनी लय-धारा होती है। बिना लय और छन्द के किसी भी कथन का सम्पूर्ण प्रभाव असम्भव है। इस मामले में पुराने आचार्य-कथन आज भी सच है कि 'गद्य कवियों की कसौटी है।' यह निकष गद्य के छंद और लय से ही संबंध रखता है। तब इतना अवश्य है कि समय के परिवर्तन और विषय की मांग के अनुकूल छंद और लय के तौर-तरीके बदल गए हैं। साहित्य-सृजन के नए सौन्दर्य-शास्त्र की मांग भी इसी में पूरी होती है। समकालीन हिंदी कविता के विषय और प्रश्नाकुलता, व्यंग्य, धिक्कार, ललकार, डांट-फटकार आदि से भरी हुई भाषा में जिस तरह की लय और छंद की आवश्यकता होती है, पूरे समकालीन काव्य लेखन में वैसी ही लय, और वैसा ही छंद उपस्थित है -

आदमी खुद बिके अथवा बेच ही डाले अपनी स्त्री अपनी आँखें अपना देश
मगर भीड़ अब खाने के लिए गेहूँ
और सो जाने के लिए किसी गंदे बिस्तरे के सिवा कोई बात
नहीं कहती है।

में राजकमल चौधरी ने, या

कहाँ तो तय था चिरागां सारे शहर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं एक घर के लिए

में दुष्यन्त कुमार ने, या

> हंसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
> हंसो, अपने पर न हंसना, क्योंकि उसकी कड़वाहट
> पकड़ ली जाएगी और तुम मारे जाओगे

में रघुवीर सहाय ने, या

> नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ-बाट की रजत जयंती
> शर्म न आती मना रहे वे, महंगाई की रजत जयंती

में नागार्जुन ने, या

> कौन-सी जगह होती है ऐसी
> जो छूट जाने पर
> औरत हो जाती है
> कटे हुए नाखूनों
> कंघी में फंसकर बाहर आए केशों-सी
> एकदम से बुहार दी जाने वाली? ....

में अनामिका ने, या समकालीन लेखन के हरेक समर्थ रचनाकारों ने अपने पूरे लेखन में इन बातों का बखूबी ध्यान रखा है।

बोध प्रश्न

6. हिंदी कविता में स्त्री स्वर को लेकर कविता लिखने वाली चार कवयित्रियों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

7. दलित कविता के अंतर्गत तीन कवियों और तीन कवयित्रियों के नाम लिखिए।

   ....

   ....

   ....

8. समकालीन हिंदी कविता की भाषा पर प्रकाश डालिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

9. समकालीन हिंदी कविता में बिम्ब और प्रतीक को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

10. निम्नलिखित रचनाओं के रचनाकारों के नाम लिखिए–

1. हम जो देखते हैं
2. पिछला बाकी
3. बाघ
4. सीढ़ियों पर धूप में
5. खुद अपनी आँख से

8.12 सारांश

समकालीन हिंदी कविता सन् 1960 से आज तक की तमाम उथल-पुथल को अपनी पैनी निगाह से देखती समझती आई है। इन लगभग पाँच-छह दशक की हिंदी कविता की यात्रा अकविता, प्रगतिशील जनवादी कविता और नवगीत की सुसंगत परंपरा को भी समकालीन कविता का अंग माना गया; और यह भी अच्छा हुआ कि समकालीन हिंदी कविता के इस लंबे कालखंड में कभी कोई नेता नहीं खड़ा हुआ और किसी ने अपने को समय का देवता या इतिहास पुरुष साबित करने की कोशिश नहीं की। नागार्जुन, केदानाथ अग्रवाल की पीढ़ी से चली प्रगतिशील और समकालीन हिंदी कविता मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह के यहाँ होते हुए राजेश जोशी, अरुण कमल, गगन गिल, कात्यायनी, अनामिका तक कई आयुवर्ग के कवियों और पीढ़ियों द्वारा लिखी जाती रही है। कवि का संघर्ष ज्यों का त्यों है। बल्कि कुछ और तीखा ही हो गया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास और बाजार के हस्तक्षेप से लोकतंत्र में पाखंड की और बढ़ा हुआ है। फलस्वरूप आज के सारे कवि फिर से सन् साठ की तरह ही, मजाकिया लोकतंत्र, जनविरोधी शासन-व्यवस्था, भीड़ विरोधी सामाजिक मान्यता के प्रतिपक्ष में, वैसे के वैसे खड़े हैं - जैसे कभी नागार्जुन, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी खड़े थे।

समकालीन हिंदी कविता के इस पूरे दौर ने और कुछ सफलता हासिल की हो या नहीं, पर इतनी सफलता तो इसके नाम जाती है कि इस अंतराल में जनचेतना पर्याप्त उद्‌बुद्ध और जाग्रत रही है।

पूरे प्रसंग को समग्रता में देखें तो खंड-खंड में बंटे मानव समुदाय, प्रांतों में बंटे देश; संप्रदायों-जातियों-पदों में बिखरे लोग; अधिकारों की लड़ाई से जूझता दांपत्य एवं पारिवारिक बंधन; जनहित से निरपेक्ष राजनेता, मानव मूल्य और नीति मूल्य से परे पुलिस, पत्रकार, बुद्धजीवी; ओछी हरकतों में लिप्त राजनीतिक पार्टियाँ, कालाबाजारी में व्यस्त सेठ-साहूकार; देश की नैतिकता एवं अस्मिता के व्यापार में लिप्त तस्कर; भारतीय संस्कृति पर बाजारवाद और भूमंडलीकरण के खतरे; नकल की चकाचौंध में अपनी जमीन छोड़ती भारतीय जनता की सारी जिम्मेदारियों के साथ समकालीन हिंदी कविता और इसमें लगे

सभी पीढ़ी के सभी कवियों के समक्ष आज कुछ बड़ी चुनौती सामने है। मगर "दबी-दूब" की प्रतीक और मानव मूल्य के रक्षार्थ प्रतिपक्ष की भूमिका में खड़ी समकालीन हिंदी कविता अपनी पूरी शक्ति के साथ डटी है, डटी रहेगी।

8.13 सहायक पुस्तकें

1. समकालीन हिंदी कविता - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन - दिल्ली।
2. समकालीन कविता का व्याकरण - परमानन्द श्रीवास्तव, शुभदा प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबादि।
4. भूलने के विरुद्ध - रमेश चंद्र शाह - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

8.14 बोध प्रश्नों /अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. देखिए 8.2
2. देखिए 8.3
3. देखिए 8.4
4. देखिए 8.5
5. देखिए 8.5 एवं 8.2

बोध प्रश्न 2

6. देखिए 8.6
7. देखिए 8.7
8. देखिए 8.9
9. देखिए 8.10
10. (1) मंगलेश डबराल (2.) विष्णु खरे (3) केदारनाथ सिंह (4) रघुवीर सहाय (5) विष्णु खरे